कहानी-कुञ्ज

(संशोधित संस्करण)

सम्पादक

श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी

शक १८९८ : सन् १९७६

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

प्रकाशक
प्रभात मिश्र शास्त्री
प्रधानमंत्री
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

द्वितीय संस्करण
शकाब्द १८९८, (सन् १९७६)
मूल्य : तीन रुपए

मुद्रक
सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग

प्रकाशकीय

⊙

कहानी-कुञ्ज तेरह कहानियों का संग्रह है। इसके संपादक पं० भगवतीप्रसाद जी वाजपेयी हिन्दी-कथा-साहित्य के स्रष्टा और द्रष्टा थे। सम्मेलन की मध्यमा परीक्षा के पाठ्यक्रम को दृष्टिगत रखकर संपादित किया गया 'कथाकुंज' सम्मेलन की मध्यमा परीक्षा के अतिरिक्त इसी की समकक्ष अन्य परीक्षा परिषदो की परीक्षाओं के लिए उपयोगी है।

मनीषी कथाकार स्व० वाजपेयी जी की वैदुष्यपूर्ण भूमिका छात्रों और अध्यापकों को हिन्दी कहानी के मानक और मानदण्ड का बोध प्राप्त करने में सहायक सिद्ध होगी।

डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल
साहित्यमंत्री

अनुक्रम

⊙

कहानी-कुञ्ज

कहानी की कथा

(१)

रिचर्ड वर्टन का कथन है—"कहानी संसार की सब से पुरानी वस्तु है; इसलिए आश्चर्य नहीं कि इसका प्रारम्भ उसी समय से हुआ हो, जब मनुष्य ने घुटनो के बल चलना सीखा था।"

तात्पर्य यह कि कहानी का जन्म हुए सैकड़ों युग बीत गये। मनुष्य ने समाज बनाया, समाज ने अपनी सुविधा के लिए कुछ नीतियाँ और रीतियाँ स्थिर कीं, जिन से मनुष्य के संस्कार बने और फिर कालान्तर में उन्होंने एक सभ्यता का रूप ग्रहण कर लिया। सभ्यताओं ने करवटें ली, तो मानवी संस्कारों को नया जीवन मिला। युग-पर-युग बीतते चले गये, मनुष्य ने जब घुटनों के बल चलना सीखा था, तब भी वह कहानी कह रहा था। आज जब वह वायुयान पर बैठ कर घूमता है, तब भी—उससे उतरते क्षण—एक कहानी कहता है। यह बात दूसरी है कि सभी मिलने वाले उसकी कहानी सुन न पायें। न केवल एक कहानी के लिए वरन् अन्य प्रकार की साहित्य-कलाओं के लिए भी न्यूनाधिक रूप में यही बात कही जा सकती है।

मनुष्य-शरीर में आँखें सब के होती है, हृदय भी सब के होता है; पर ऐसे कितने व्यक्ति होते हैं, जो किसी मार्ग पर चलते-चलते कहीं यकायक इसलिए रुक जाते हैं कि आगे चींटियों का जो दल दाहिने से बायें चला जा रहा है, उनके अगले पद-क्षेप से उस के दस-बीस श्रमजीवी कहीं कुचलकर मर न जायँ! सभी व्यक्तियों की रुचि एक-सी नहीं होती,

न सभी व्यक्ति समान रूप से भावनाशील होते हैं; इसलिए, हम जगत्-सृष्टि में निरन्तर जो बातें हम सुनते हैं, जो दृश्य अपनी आँखों से देखते हैं, उन सब को न विशेष रूप से हृदयंगम कर पाते हैं, न उन में निहित साहित्य-रस के ग्रहण करने की तत्परता ही होती है।

एक दिन [illegible], हाथार्न और लांगफेलो भोजन कर रहे थे; संयोग से उन के मित्र जेम्सफील्ड भी वहाँ उपस्थित थे। वार्तालाप के बीच उन्होंने यों ही कह दिया—"मैं न जाने कितने दिन से हाथार्न से, एक आर्केडियन दन्त-कथा के आधार पर, कहानी लिखने का अनुरोध कर रहा हूँ; पर इन से लिखा ही नहीं जाता।"

लांगफेलो ने मुसकराते हुए पूछा—"कथानक क्या है?"

जेम्सफील्ड ने उत्तर दिया—"मुझे तो कथानक बड़ा ही मर्मस्पर्शी जान पड़ता है। आर्केडियन लोगों की भाग-दौड़ में कहीं एक लड़की अपने प्रेमी से छूट गयी। परिणाम यह हुआ कि उस ने अपना समस्त जीवन प्रेमी की खोज में व्यतीत कर दिया। अन्त में प्रेमी तो उसे नहीं मिला; किन्तु वह लड़की उस प्रेमी को एक अस्पताल में मिल गयी।...पर उस समय जब वह मृत्यु-शय्या पर पड़ी हुई थी।"

कथानक सुन कर लांगफेलो के आश्चर्य की सीमा न रही। प्रेरणा के आग्रह से तत्काल उनके मुँह से निकल पड़ा—"अगर तुम्हारा विचार इस कथानक के आधार पर कहानी लिखने का न हो, तो मैं कविता लिख डालूँ।"

हाथार्न ने तुरन्त अनुमति दे दी। लांगफेलो का प्रसिद्ध काव्य 'इवेंजेलिन' इस कथानक के अवलम्बन की रचना है।

०　　　　　　　०　　　　　　　०

कहानी की सर्वसम्मत परिभाषा लिखना दुष्कर है। यों तो साधारण रूप से यह समस्त जगत ही भिन्न रुचियों से निर्मित हुआ है; किन्तु जीवन की आधारभूत वृत्तियों में इतनी विभिन्नता प्रायः कम ही देखने को मिलती है, जितनी कला के क्षेत्र में। डॉक्टर जॉनसन तो वैज्ञानिक बात

में भी कलाकार की-सी भाषा का प्रयोग कर बैठते हैं; यथा—"हम जानते है कि प्रकाश क्या वस्तु है; किन्तु हम में से कोई यह नहीं बता सकता कि वह क्या है और कैसा है ?" कविता के सम्बन्ध में भी ठीक कुछ इसी प्रकार की सम्मति कॉलरिज की है; यथा—"कविता का पूरा-पूरा रस तभी मिलता है; जब वह भली भाँति समझ में नही आती।"

कहानी के विषय में भी विश्वविख्यात् लेखक के मत भिन्न-भिन्न प्रकार के है; यथा—

मिस्टर फोरस्टर—कहानी परस्पर सम्बद्ध घटनाओं का वह क्रम है, जो किसी परिणाम पर पहुँचता है।

फोरस्टर महोदय की यह परिभाषा तो कुछ समझ में आती है; पर किसी भी क्रम की कहानी कहना वाक्-शैथिल्य प्रकट करना है।

अब ह्यूवाकर महोदय का मत देखिए।

आप कहते है—"जो कुछ मनुष्य करे, वही कहानी है।" जो कुछ मनुष्य न करे या न कर पाये, लाख चेष्टा करने पर भी, किसी तरह न कर पाये, प्रश्न यह है कि वह कहानी क्यों नही है ?

एडगर एलन पो का कथन है—"कहानी एक प्रकार का वर्णनात्मक गद्य है, जिस के पढ़ने में आधे घंटे से लेकर एक घंटे का समय लगता है। अर्थात्, एक बैठक में पूर्ण रूप से जो पढ़ा जा सके, वही कहानी है।"

यह परिभाषा भी कम अस्पष्ट नही है। 'कहानी एक प्रकार का वर्णनात्मक गद्य है कथन में यह बात छिपी रह जाती है कि जिसे वे एक प्रकार का 'वर्णनात्मक गद्य' कहते है, वह वास्तव ने किस प्रकार का है और घंटे-आध घंटे का समय निर्धारित कर देने से परिभाषा के स्पष्टीकरण में कोई विशेष सहायता नहीं मिलती।

परन्तु अन्यत्र उन्होंने लिखा है कि कथाकार यदि प्रवीण और कला-कुशल है, तो वह अपनी कहानी में पहले कोई घटनाचक्र देखकर फिर उस में अपने विचारों की कड़ियाँ डाल देने में गलती कभी न करेगा। वह सतर्कता से अपने लक्ष्य और प्रभाव की कल्पना करेगा, उसके बाद

वह घटनाओं की रचना और कथानक की संयोजना इस ढंग से करेगा कि उस का लक्ष्य और प्रभाव सर्वाधिक सफलता व्यंजित करने मे समर्थ हो।

एडगर एलन पो महोदय अँगरेजी कथा साहित्य के आदि-निर्माता माने जाते हैं। कहानी-लेखन के साथ उन्होंने कथा-निरूपण के सम्बन्ध में अपने सिद्धान्त और विचार भी सुन्दर ढंग में व्यक्त किये हैं। उन के कथनानुसार, "पाठकों की भावना तथा बुद्धि को स्पर्श करना लेखक के लिए आवश्यक है; पर प्रभाव की एकता का निर्वाह तो उस के लिये अनिवार्य रूप से आवश्यक है। वह घटनाओं का तारतम्य उपस्थित करे, वह चरित्र-निर्माण का ऐसा आदर्श ग्रहण करे, जो अभीष्ट प्राप्ति में सहायक हो, पर उस में भरती का एक शब्द न होना चाहिए।"

वालपोल का कथन है—"कहानी में घटनाओं का ब्यौरा होना चाहिए कहानी घटना दुर्घटना संकुल हो, उस की गति तीव्र हो, उस का विकास अप्रत्याशित हो। उसे दुविधा के माध्यम से संकट की परिणति की ओर अग्रसर होना चाहिए। कहानी की स्थिति उस घुड़दौड़ की भांति है, जिस का प्रारम्भ और अन्त ही महत्वपूर्ण होता है।"

जैक लण्डन का मत है—'कहानी-मूर्त, सम्बद्ध त्वरागुणमयी, सजीव तथा रुचिकर होनी चाहिए।"

जे० बी० ईसनवीन ने लिखा है—"प्रभाव की एकता, कथानक की श्रेष्ठता, घटना की प्रधानता, एक प्रधान पात्र और किसी एक समस्या का समाधान—कहानी मे ये पाँच गुण होने चाहिए ।.. कथानक में घटनाओं का तारतम्य, तीव्रता, घटना में सम्भाव्य प्रकृति, कोई एक नाटकीय प्रसंग, दुविधा और उत्सुकता होनी आवश्यक है।"

वेरीपेन का मत है—"उपन्यास एक तृप्ति और निराकरण है और कहानी एक प्रोत्साहन और उत्तेजना। इसी भाव को हम इस प्रकार भी कह सकते है कि उपन्यासकार यदि विश्लेषक है, तो कहानीकार संश्लेषक।"

हडसन का कथन है—"कहानी में चरित्र व्यक्त होता है और उपन्यास में विकसित।"

प्रेमचन्दजी का कथन उपर्युक्त कथनों से बहुत मिलता-जुलता है। उन्होंने कहा था—"कहानी एक ऐसा उद्यान नहीं, जिस में भाँति-भाँति के फूल, बेल-बूटे सजे हुए हैं; बल्कि एक गमला है, जिस में एक ही गमले का माधुर्य्य अपने समुन्नत रूप से दृष्टिगोचर होता है।"

स्टीवेंसन का मत है—"कहानी जीवन-भर की प्रतिनिधि नहीं, उसकी कुछ दिशाओं का ही वर्णन लघुकथा पहले कथा है, उस के बाद लघु जैसा कि उस के अर्थ से व्यक्त होता है। यह समझ लेना अनुचित होगा कि वह एक संक्षिप्त उपन्यास होती है। लघुकथा मे यद्यपि नाटकीय गुण होता हैं तथापि यह समझ लेना भी अनुचित होगा कि वह नाटक के विविध भेदों में से एक है। वह निर्दिष्ट क्रिया के किसी अंश-विशेष को ही व्यक्त करती है। वह जीवन का कोई ऐसा प्रसंग उपस्थित करती है जो उसकी किसी एक परिस्थिति, अनुभूति अथवा घटना की नाटकीयता से, उस के सम्पूर्ण जीवन की एकरसता और परिपूर्णता की छाप पाठक के मन पर डाल देती है।"

० ० ०

कल्पना की एकनिष्ठ प्राणमयता केवल कहानी में नही, व्यापक रूप से सम्पूर्ण साहित्य के मौलिक आधार रूप में स्वीकार की जाती है। आज हम जीवन का जो भी रूप देखते है, निश्चित रूप से एक दिन वह केवल कल्पना रही होगी। मनुष्य के जन्म को ही सत्य रूप बाद मे मिला, पहले वह केवल कल्पना रहा होगा। कल्पना सत्य के कितने निकट होती है, इस बात पर प्रायः कम विचार किया जाता है। और कहानी के विषय में तो साधारण जन-समुदाय की यह एक एकान्त मान्यता-सी बन गयी है कि उस की सारी बाते मनगढ़न्त होती हैं। विचार कर के देखा जाय, तो यह धारणा बड़ी भ्रामक है। केवल कला और साहित्य के आँगन में नहीं, जीवन के निखिल व्यापक चिरन्तन सत्य में भी कल्पना का अपना एक मौलिक स्थान है। जो कार्य हम निरन्तर किया करते हैं, क्रिया का रूप तो उसे बाद में प्राप्त होता है; पर कल्पना हमारे मन में

उन की प्रवृत्ति से प्रकट हो जाती है। [illegible] पहले
निर्दिष्ट [illegible] में जो नाना प्रकार की [illegible]; [illegible] और उन के
[illegible] एक समस्या होती है।
[illegible] आधार पर होती है।

[illegible] हम इन निष्कर्ष
पर पहुँचने से [illegible] कहना पड़ता है। अब एक प्रश्न यह
उठता है—यदि [illegible] कोई घटना [illegible] और उसका यथा-
तथ्य वर्णन कर दिया जाए, तो क्या वह वर्णन-मात्र कहानी हो जायगा।
स्पष्ट है कि नहीं होगा। कारण यह है कि घटना तो उस क्रिया का नाम है,
जिस में तुलनात्मक दृष्टि से मनुष्य के सजग प्रयत्न के द्वारा अपेक्षाकृत
कम उस के नानाविध प्रकृति की [illegible] के मूल में निहित अदृष्ट
लीला का हाथ प्रमुख रहता है। जिस प्रकार प्रत्येक घटना का स्थायी
गुण उसका आश्चर्य-मूलक चमत्कार है, उसी प्रकार कहानी का स्थायी
गुण भी उस में निहित घटना की कल्पना विस्मय और चमत्कार
है; अर्थात किसी घटना का वर्णन [illegible] उतना समीप नहीं, जितना
उस घटना के कल्पना का वर्णन। तात्पर्य यह हुआ कि कहानी मानव-
जीवन की उस वस्तुस्थिति, परिस्थिति और क्रिया-कलाप का वर्णन है,
जो केवल घटना नहीं उस सत्य की कल्पना है, जो घटना के एकान्त
क्रोड़ में कहीं छिपा पड़ा रह गया।

कदाचित् इसलिए हिन्दी-कथा के आदि प्राणदाता स्वर्गीय प्रेमचन्दजी
ने कहा था—'बुरा आदमी भी बिल्कुल बुरा नहीं होता। उसमें कहीं-न
कहीं देवता अवश्य छिपा रहता है।" यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है। इसी
(छिपे) सत्य को खोलकर दिखा देना समर्थ आख्यायिका का काम है।

उन्होंने उत्तम कहानी के लक्षण बतलाते हुए स्पष्ट कहा था—सबसे
उत्तम कहानी वह होती है, जिसका आधार किसी मनोवैज्ञानिक सत्य
पर होता है।

यह मनोवैज्ञानिक सत्य क्या है? अब हमें यह देखना है? सत्य से

अभिप्राय मनुष्य के उस बाहरी रूप से है, जो छिपा नहीं रहता, प्रकट-साकार और प्रत्यक्ष होता है। कर्म से वह प्रकट होता है, सक्रियता से उस का आकार बनता है और संसार को वचन और कर्म से उसका अनुभव करने का अवसर मिलता है, किन्तु जीवन का सत्य केवल वचन और कर्म की सीमाओं मे घिरकर—कैद होकर नहीं रहता। बहुत कुछ तो वह मन के अन्दर ही बना रहता है। यहाँ तक कि कभी-कभी ऐसे अवसर भी आते है, जब जीवन का सत्य मनुष्य की मृत्यु में प्रकट होता है।

महामना प्रेमचन्दजी के कथन का ऊपर जो उद्धरण दिया गया है, उस में कथा के मनोवैज्ञानिक सत्य के केवल एक रूप की झलक मिलती है। जिस प्रकार प्रत्येक बुरे आदमी के अन्दर एक भलाई का दर्शन उन्होंने किया उसी प्रकार प्रकट रूप से भले आदमी का आकार-प्रकार वैभव और कीर्ति रखने वाले व्यक्तियों के अन्दर कुछ ऐसी दुर्वृत्तियाँ भी छिपी रहती हैं, जो साधारण रूप से प्रकट नही होती और बहुधा प्रकाश में नहीं आतीं। एक मुँदा ढका हुआ, ऊपर से अभिराम रूप ही जिन का प्रकट होता है; पर कितना आडम्बर उनमें रहता है, कितनी बनावट के भीतर से वे झाँकते है; कितने आवरणों के द्वारा वे प्रकाश मे आ पाते है, इन सब अप्रकट किंवा छिपी हुई स्थितियों को साधारण रूप से प्राय: कम लोग ही जान पाते है। मनोवैज्ञानिक सत्य मनुष्य के इस वास्तविक रूप पर प्रकाश फेंकने का एक मुख्य साधन है; यथा—

जलेबियाँ लेकर एक लड़का सड़क पर जा रहा था। वह साइकिल के धक्के से अचानक गिर पड़ा। साइकिल वाला इसकी परवा न करके जब आगे बढ़ गया, तब चौराहे के सिपाही ने उसे रोक लिया। दोष जिसका है, इससे वह अवगत था; क्योंकि संयोग से उसकी दृष्टि उसी ओर थी। लड़के के पास लोग इकट्ठे हो गये; क्योंकि उसके हाथ में चोट आ गयी, इस कारण वह रोने लगा। उस के रुदन ने सड़क के निवासियों की सहानुभूति जगा दी। चौराहे का सिपाही जब साइकिल वाले को उस लड़के के पास ले आया, तब साइकिल वाले का ध्यान उस की ओर आकृष्ट

हुआ। और यह जान कर उस ने भी तुरन्त प्रकट किया कि ऊँची-नीची जगह में गिर पड़ने के कारण उसका हाथ टूट गया। तत्काल वह अपने अपराध के लिए उपस्थित लोगों से क्षमा माँगने लगा; पर अन्त में उस लड़के को उस साइकिल वाले ने [illegible]। लड़के का हाथ टूट गया है और वह हास्पिटल ले जाया गया है, दूसरी ओर [illegible] यह सूचना उसके पिता को मिली, जो स्वयं भी हास्पिटल में थे, अतः पट्टी उस लड़के की बाँह चढ़ा दी गयी और उस पर [illegible] दी गयी। थोड़ी देर में उनका दर्द भी कुछ कम हो गया। वह चारपाई पर चुपचाप लेटा रहा। इतने में उसका पिता वहाँ आ गया। साइकिल वाले ने जब उस व्यक्ति को आते देखा, तो लड़के के साथ-साथ वह भी रो पड़ा।

यह घटना केवल इतनी-सी है। अब इस का मनोवैज्ञानिक सत्य देखिए। साइकिल वाले की बहिन का देहान्त हो चुका था, इसलिए अपने उस बहनोई के यहाँ उसका आना-जाना बहुत कम हो गया था, जो वहाँ इस लड़के के पिता रूप में उपस्थित हैं और वह लड़का, जिसका हाथ उसने तोड़ डाला है, उनका सगा भानजा है। वर्ष-के-वर्ष बीत गये; पर उसको देखने का, उसे अवसर नहीं मिला; इसलिए वह अपने भानजे को पहचान न सका।

इस घटना में कहानी का मुख्य तत्त्व इस भावना में निहित है कि जिस पहचान के बिना साइकिल वाला अपने सगे भानजे का हाथ तोड़ डालता है, वह मनुष्यत्व की पहचान से आज कितनी दूर चली गयी है। जब तक वह लड़का उस साइकिल वाले का भानजा नहीं है, तब तक वह ऐसी लापरवाही से चलता है कि उस को धक्का लग जाता है और वह वहीं गिर पड़ता है। उसके संस्कार इतने गिरे हुए हैं कि पहले अपने ही धक्के से गिरते हुए जिस अपरिचित बालक को छोड़ कर वह भाग गया है, जब उसे ज्ञात होता है कि वह तो उसका भानजा है, तब वह अपनी इस असावधानी पर रो पड़ता है; अपने सगे भानजे और सड़क पर जाते हुए अपरिचित लड़के के साथ होने वाले व्यवहारों में जो अन्तर उस साइकिल वाले व्यक्ति के

संस्कारों में आ गया है, वह उस सभ्यता का प्रतीक है, जिसने आज साधारण मनुष्य को पशु की भाँति बर्बर बना डाला है। और इसी ओर संकेत करना इस घटना में निहित उस मर्मवाणी का मूल उद्देश्य है, जिसे हम कहानी में मनोवैज्ञानिक सत्य कहा करते हैं।

समालोचक क्षेत्र में अग्रणी आचार्य श्री नन्ददुलारे वाजपेयी का मत है—"जिस प्रकार चित्र में सारा खेल रेखाओं और रंगों का ही होता है, सारा प्रभाव साधनों पर ही अवलम्बित रहता है, उसी प्रकार श्रेष्ठ कहानी में व्यंजक और व्यंग्य का, कथा और उद्देश्य का एकीकरण हो जाता है।...नवीन कहानी साध्य को साधन से, उद्देश्य को कथानक से एकदम अभिन्न बना कर चलती है। और कभी-कभी तो जीवन-घटना ही—कहानी की वस्तु ही—अपना साध्य आप बन जाती है। घटना के मर्म में ही उद्देश्य छिपा रहता है।"

वाजपेयीजी के कथन में कहानी के प्रच्छन्न उद्देश्य पर विशेष बल दिया गया है; क्योंकि एक लेखक का कथन है—

"प्रत्येक कला कृति एक-न-एक निगूढ़ नैतिक महत्त्व रखती है। पर आप (कृपा करके कला की इस) प्रकृति पर अपना कोई विधान न आरोपित कीजिए।"[1]

जीवन की वास्तविक झलक देने में कहानी की क्षमता साहित्य के अन्य अंगों की अपेक्षा कहीं अधिक है। कविता के सम्बन्ध में अँग्रेजी कवि कॉलरिज का ऊपर जो अभिमत व्यक्त किया गया है, वह उनकी भिन्न रुचि मात्र का परिचायक नहीं है, उसमें कविता की एक कलात्मक परम्परा का भी आभास मिलता है। मनुष्य की आत्मा का मूल स्वर यों तो व्यापक रूप से कविता द्वारा प्रकट होता है, वह जितना अधिक स्थायी होता है, उतना ही चिन्तनहीन भी रहता है। कदाचित इसका कारण

---

१. एवरी वर्क आफ आर्ट हैज़ ए प्रोफाउंड मारेल सिगनी.फिकल, बट यू मस्ट नाट इम्पोज़ योर ओन लॉज़ ऑन नेचर।

यह है कि सभ्यता के युगयुगान्तर पार कर डालने पर भी कविता का गेय गुण अब तक यथावत् स्थिर है। जो कविता गेय नहीं हो पाती, वह स्मरण-शक्ति की पावन गोद में आश्रय से वंचित हो जाती है। और गेय बनी रहने के कारण वह परिवर्तनशील जीवन की नाना वृत्तियों पर विवाद, तर्क-मन्थन कर चिन्तन प्रकट करने की अपनी प्रकृत सामर्थ्य-सम्पदा भी खो देती है।

संस्कृत-साहित्य के समर्थ विधायकों एवं आचार्यों ने साहित्य के सभी अंगों में नाटक को जो श्रेष्ठ माना है, उसके मूल में भी कदाचित् उनका यही मन्तव्य रहा होगा कि प्रतिभा का उत्कृष्ट रूप प्रकट करने का जितना अवसर नाटक में रहता है, उतना केवल कविता में ही नहीं, किसी भी कलाकृति में सम्भव नहीं है। इस निष्कर्ष में यह बात छिपी रह गयी है कि गेय कविता के उत्कृष्ट रूप का निखिल संयोजन उन्हें नाटक में प्राप्त हो रहा है।

अपने पूर्वाचार्यों की ज्ञान-गरिमा के समक्ष संविधान नत-शिर होकर भी उपर्युक्त निष्कर्ष के विपरीत कहानी को जीवन के अधिक निकट मानने का एक आधार है। और वह है जीवन के साथ कला का सम्बन्ध। एक युग था, जब कला को केवल मनोरंजन का साधन माना जाता था। आज की स्थिति उससे भिन्न है। आज तो हम कला की प्राणमयता को उपयोगिता की दृष्टि से देखे बिना जीवन से दूर जा पड़ते हैं; अतएव विचारने की बात है कि कहानी, काव्य और नाटक की अपेक्षा किस प्रकार जीवन के अधिक निकट है। कविता से हम विचार-चिन्तन की उतनी आशा नहीं करते, जितनी उत्तरंग-मानस के उद्‌गारात्मक उत्कर्ष की। नाटक में निस्संदेह विचार-चिन्तन का अवसर रहता है; पर जीवन जिस शान्त प्रवाह के साथ गतिशील रहता है, उसकी यथार्थ अभिव्यक्ति नाटक में सम्भव नहीं है। नाटक में उन घड़ियों के चित्रण के लिए कहाँ स्थान है, जिन में मनुष्य के हाथ-पैर तो काम नहीं करते, पर उनका मानस उद्वेलित रहता है। नाटक

में प्रत्येक दृश्य के लिए एक-न-एक घटना ऐसी चाहिए, जो इस पार्थिव जगत् में सहज सम्भव हो। मानसिक विपर्यय भी वह हाहाकारमयी मूक वेदना, जो वाणी पर आ ही नहीं पाती—नाटक की सीमाओं में कहाँ आ सकती है ? वह अभिनय, जो संवाद की मर्मवाणी पा नहीं सकती, नाटक की मुखर सत्ता से कहाँ तक संलग्न रह सकता है। फिर नाटक में मनुष्य के साधारण जीवन की झाँकी के लिए कम, असाधारण जीवन की झलक के लिए निश्चित से अधिक अवसर हैं। जीवन की क्षण-क्षण व्यापी अश्रुविगलित विश्वास-वाणी को नाटक की नाटकीयता कितनी देर सहन करेगी ?

नाटक तो उन परिस्थितियों का दृश्यमान लेखन है, जिनका मनुष्य की कर्मधारा के साथ अविच्छिन्न संबन्ध है। चिन्ता-धारा के क्षेत्र में उनकी स्थिति अभी तक नगण्य है। आज का जगत् चाहे, तो कह सकता है कि ऐसा मनुष्य किस काम का, जो अपना मनोभाव ही प्रकट नहीं करता ! पर तब 'रहिमन निज मन की व्यथा मन ही राखो गोय' का कवि भी ऐसे जगत् के लिए किस काम का रह जायगा ?

इस प्रकार कविता और नाटक, साहित्य के ये दोनों अंग जीवन का सम्पूर्ण मर्म प्रकट करने में उतने समर्थ नहीं, जितनी कहानी। और उपन्यास का जगत् तो इतना व्यापक और विस्तृत है कि उसमें हमारे क्षण-क्षण की जीवनव्यापी चिन्ता-धारा ही नहीं, उसके निखिल कार्य-कलाप की अभिव्यक्ति हो जाती है। और जहाँ तक चरित्र-चित्रण का सम्बन्ध है, कहानी की अपेक्षा उपन्यास कहीं अधिक समर्थ है। कहानी में चरित्र-चित्रण के लिए अवसर भी अपेक्षाकृत कम रहता है। उसका कार्य चरित्र-सृष्टि तक ही सीमित है। चाहे संवाद हो या दृश्य का जीवन-दर्शन; पत्र लिखा गया हो, या वक्तव्य दिया गया हो; घर हो या सामाजिक सभा-भवन; प्लेटफार्म हो या रेल की यात्रा चल रही हो; कहानी हमारे जीवन के सभी अंश-विशेष की झलक ही उत्पन्न करेगी। या तो किसी घटना का रहस्योद्घाटन करेगी, या किसी विशिष्ट चरित्र की सृष्टि

करके उसकी एक साकार, सवाक् प्रतिमा हमारे सम्मुख उपस्थित कर देगी: किन्तु उपन्यास में उसके जीवन भर का चढ़ाव उतार ऐसे रूप में प्रकट होगा कि उसके चरित्र के क्रम-विकास का सारा इतिहास ही मुखरित हो उठेगा। इस प्रकार आकार की सीमा की दृष्टि से नहीं, उसके शिल्प-विधान की दृष्टि से भी कहानी में चरित्र-चित्रण के लिए उपन्यास की अपेक्षा कम अवसर रहता है।

कहानी केवल घटनात्मक नही होती, वह चरित्रात्मक और मनोवैज्ञानिक भी होती है। बात यह है कि घटनाएँ मनुष्य के जीवन में ही नहीं होती, उसके मन मे भी होती है। जो व्यक्ति बोलता कम, काम अधिक करता है, उसके मन में एक अलग दुनिया बसी रहती है। प्राय: हम देखते है कि चाभियो के जिस गुच्छे को खोजने मे एक व्यक्ति ने अभी सारे घर मे खलबली मचा रखी थी, वह गुच्छा उसके कोट की जेब मे पड़ा मिलता है, जो वह पहने रहता है। प्रोफेसर गुप्त ने अभी अपने छोटे भाई से दवात मांगी थी; पर जब वह उनके पास दवात लेकर पहुँचता है, तब वे कहते है की मैने तो गोंद की बॉटल माँगी थी। मुशी रामप्रसाद के पास आज एक लिफाफा डेड लेटर ऑफिस से लौटकर आया है। उसके अन्दर जो पत्र है, वह उन्ही के हाथ का लिखा हुआ है। लिफाफे के ऊपर उनका नाम और पता भी लिखा हुआ है। फिर भी आश्चर्य है कि वह उन्ही के पास कैसे लौट आया। उलट पलट कर उसे ध्यान से देखते है; तब पते की ओर जो उनकी दृष्टि जाती है. तब यह देखकर अवाक् रह जाते है कि जिन बन्धु को उन्होने यह पत्र भेजा था, पते पर नाम-मात्र केवल उनका शेष भाग की पूर्ति मे उन्होने स्वयं अपने घर का पता लिख दिया है।

इस उदाहरण से यह स्पष्ट विदित होता है कि मनुष्य के बाहर के जगत् से उसके भीतर का जगत् सर्वथा भिन्न है। और इसी भिन्नता को प्रकट कर देना मनोविश्लेषण का मुख्य धर्म है।

(२)

कहानी कला के तत्वदर्शी, उसके शिल्पविधान के समीक्षक, इस विषय में प्रायः एक मत हैं कि हिन्दी कहानी के आधुनिक स्वरूप पर अंग्रेजी, फ्रेंच तथा रूसी कहानियों का व्यापक प्रभाव पड़ा है; परन्तु यह बात कितनी विचित्र और मनोरंजक है कि कथा साहित्य का मुख्य जनक हमारा देश भारतवर्ष ही है; और आधुनिक सभ्यता के मूल स्वर की दृष्टि से उनका सबसे अधिक गरिमामय इतिहास कथा-साहित्य का ही है।

लगभग बीस वर्ष पहले की बात है कि आचार्य श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी ने एक पत्र में, इस विषय पर एक बहुत गवेषणापूर्ण लेख लिखा था। उसके अनुसार मिस्टर बेनफी ने, जो साहित्य के ऐतिहासिक शोध में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखते है, सारे संसार की कहानियों की आधार-भूमि भारतवर्ष को ही माना है...। मिस्टर विण्टरनित्स ने अपने 'सम प्राब्लेम्स आँव इण्डियन लिट्रेचर' में लिखा है कि 'पंचतंत्र' संसार के साहित्य का सबसे अधिक मनमोहक अध्ययन है और मिस्टर वुल्फ ने 'पंचतंत्र' के अरबी भाषा के अनुवाद को जर्मन भाषा में अनुवादित करते हुए लिखा है कि संसार की सर्वाधिक भाषाओं के अनुवादित साहित्य में बाइबिल के बाद 'पंचतंत्र' का ही स्थान है।

इस प्रकार स्थिति यह है कि हम कहते हैं—हमने उनसे सीखा; और वे कहते है कि हमने आपसे पाया। अब प्रश्न यह है कि इन दोनों कथनों का मूल आधार क्या है और साथ ही इस बात पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है कि 'पंचतंत्र' को जो इतना गौरव मिला, उसमें प्रचार-काल की स्थिति क्या थी ?

द्विवेदीजी ने इस विषय मे भी कुछ तथ्यपूर्ण प्रामाणिक बातें कही हैं। उनके मत से पंचतंत्र' का रचनाकाल अभी तक निश्चित नहीं हुआ; परन्तु इसका सबसे पहले अनुवाद पहलवी भाषा में बादशाह नौशेरवाँ (सन् ५३१–५७९) ने हकीम बर्जो से करवाया था।

तदनन्तर १८०१ ई० में [illegible] भाषा में इसका अनुवाद हुआ। इसके पश्चात् [illegible] भाषाओं में [illegible], और, [illegible] देशों की भाषाओं में इसका अनुवाद हुआ। [illegible] ने [illegible] में इसका अनुवाद हिन्दू भाषा में किया। तदनन्तर हिन्दू भाषा से अनुवाद [illegible] भाषा में जो अनुवाद हुआ, वही [illegible] में सबसे अधिक लोकप्रिय माना गया।

[illegible] कि [illegible] 'गीतगोविन्द' का ऐसा विश्वव्यापी सम्मान [illegible] गया! [illegible] के साहित्य के प्रचार के साधन [illegible] इतना [illegible] और प्रचार कैसे हो सका। [illegible] न होगा पश्चिम और पूर्व की सभ्यता और संस्कृति में आकाश और पाताल का अन्तर है; फिर भी उन देशों ने [illegible] को इतना गौरव [illegible] प्रदान किया, जो प्राच्य आदर्शों से दूर ही दूर रहते हैं और उन्हें साधारणतः अव्यावहारिक और मानव-जगत् के लिए एक अद्भुत चमत्कार के रूप में देखते हैं? ध्यान से देखने और विचार करने पर, अन्त में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जो साहित्य अखिल जगत् और उसमें फूली-फली मानवता को सार्वलौकिक और सर्वकालीन—अपेक्षाकृत सर्वव्यापक—विचार, दृष्टि और प्रेरणा देता है, उसकी सुधाधारा सतत नवाहिनी और नवोन्मेषिणी होती है। जाति और समाज-गत भेदाभेद उसके लिए क्षणस्थायी रहते हैं। वह सामूहिक रूप से एक ही प्रकार के आनन्द-सन्दीपन से समस्त विश्व और प्रकृति को अनुप्राणित करता रहता है। जिस प्रकार की वेदना से प्राच्य व्यक्ति, व्यथित, उन्मन, व्याकुल, सन्तप्त और पीड़ित रहता है, इसी प्रकार की वेदना से पाश्चात्य व्यक्ति। जैसे सुख दुःख-राग-विराग, ईर्ष्या-द्वेष, सम्पर्क, आकर्षण और मिलन प्राच्य मानस को प्रभावित करते हैं, वैसे ही पाश्चात्य मानस को। तात्पर्य यह है कि एक ही प्रकार की चिन्ता-धारा समस्त मानव-प्रकृति के मानसिक स्वास्थ्य का प्रतिनिधित्व करती

रहती है देश और काल, युग-परिवर्तन के प्रभावों में कोई व्यापक और मौलिक भेद नहीं उत्पन्न कर पाते। जो भेदाभेद कभी झलकते भी है, ध्यान से देखा जाय, तो वे क्षणस्थायी कृत्रिम, आरोपित और मिथ्या होते हैं।

संस्कृत-साहित्य के रीति-ग्रन्थों में अग्निपुराण का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। उसमें कथा के जो लक्षण दिये गये है, उनमें कहानी के शिल्प विधान का एक परम्परागत आभास तो मिलता ही है, साथ ही उसके क्रम-विकास पर भी पर्याप्त प्रकाश पड़ जाता है। उसके अनुसार कथा लेखक के वंश का स्तवन और उसकी घटना, कन्याहरण युद्ध और विप्रलम्भ आदि विपत्तियों से युक्त होनी चाहिए।

कहा जाता है कि आज का युग मुख्य रूप से ज्ञान-विज्ञान का युग है, और साहित्य की उपयोगिता की दृष्टि से यह गद्य का युग है; किन्तु भारतीय साहित्य का आदिकाल पद्यमय रहा है। कहना न होगा, वेदों की ऋचाएँ पद्य में है। शब्द का अर्थ ही पद्य है। इसी कारण कहानी का जन्म संस्कृत-साहित्य में पहले-पहल पद्य में हुआ। यद्यपि ऐसा नहीं है कि वैदिक साहित्य में गद्य का अभाव रहा हो। तत्कालीन ब्राह्मण ग्रन्थ गद्य में लिखे गये है। कादंबरी गद्य-साहित्य के उत्कर्ष की पताका आज भी फहरा रही है।

ऊपर अग्निपुराण में आख्यायिका के जो लक्षण दिये गये है, उनका सम्बन्ध प्रबन्ध काव्यों में निहित आख्यायिकाओं के गुणों के साथ विशेष और निकटतम जान पडता है। आख्यायिका में लेखक के वंश का स्तवन उस परम्परा को व्यक्त करता है, जिसमें प्रबन्ध काव्यों के आदि में कवि अपने आश्रयदाता राजन्यवर्ग का स्तवन करने के साथ-साथ अपने वंश का उल्लेख करने में कोई संकोच नहीं करता था। यह परिपाटी किसी–न-किसी रूप में आज भी विद्यमान है। आज का लेखक भी, हम देखते है, साहित्य-ग्रन्थों के समर्पण में कृतज्ञता-ज्ञापन तथा भूमिका में अपने संबंध की बात, अपने जीवन की बात, अपने

साहित्य की देन है, अपने पूर्वजों के गुण, प्रकृति, स्वभाव का उल्लेख बड़े गर्व के साथ करता है। केवल शैली, दिशा और प्रकार बदल गया है। अपने आश्रयदाता के साथ-साथ प्रकारान्तर से अपना और अपने वंश का उल्लेख किसी-न-किसी रूप में आज भी प्रचलित है।

अग्निपुराण के अनुसार यद्यपि आज का आख्यायिका-लेखक अपने वंश का स्तवन नहीं करता; किन्तु यह तो निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि अपनी मान्यताओं के स्तवन के साथ दुर्बलताओं का मनोहर निरूपण स्वनिर्मित प्रसंगों के स्तवन के द्वारा उनकी कथाओं में निश्चित रूप से रहता है। यह स्थल आज की कथाओं के उदाहरण दे-देकर उनके लेखकों के अहंवाद की मर्मवाणी व्यक्त करने का नहीं है। यहाँ हम केवल यही कहना चाहते है कि अग्निपुराण मे, कथा के लक्षणों में, लेखक के वंश के स्तवन का जो उल्लेख किया गया है, उसका क्रमागत सम्बन्ध हम आज के कथा-साहित्य में स्पष्ट रूप से देख सकते है।

अब हमें देखना यह है कि अग्निपुराण के अनुसार कथा के शेष लक्षण आधुनिक कहानी मे किस धरातल, स्तर और विकास के साथ विद्यमान है।

प्राचीन काव्यो में युद्ध-वर्णन की जो प्रधानता है, उसका साहित्य के मूल उपादानों के साथ बड़ा ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। पशुबल के साथ बुद्धिबल का, सत्य और न्याय पक्ष के साथ असत्य, अन्याय और दुराग्रह पक्ष का, भौतिक स्वार्थों के साथ आध्यात्मिक उत्कर्ष, किंवा परमार्थ का साधु और तपस्वियों के साथ दुष्टों और धूर्तों का इसी प्रकार देवताओं के साथ राक्षसों का सम्पर्क, सम्बन्ध, संघर्ष, शक्ति-परीक्षण और युद्ध, जैसे हमारी सभ्यता के इतिहास के विकास का एक अनिवार्य विषय है, वैसे ही वह कथा-साहित्य के क्रम विकास का भी एक आधारभूत अंग है। कदाचित् इसीलिए प्रबन्ध-काव्यों के ऐतिहासिक आधारों के सिवा मनुष्य के साधारण जीवन में भी युद्ध

का स्थान—सामाजिक विषमता तथा मनोगत अन्तर्द्वन्द्व के रूप में—सर्वथा निश्चित और एक चिरन्तन सत्य बन गया है।

परन्तु अग्निपुराण में जिस प्रकार के युद्ध को कथा का एक गुण माना गया, राजनीतिक प्रभावों के साथ अक्षुण्ण होने के कारण कथा-साहित्य में वह बहुत सीमित रह गया है। उसका स्थायी और व्यापक नाता तो मनुष्य के मन में निरन्तर चलने वाला युद्ध और अन्तर्मन में निहित जीवन में व्यापक रूप से फैले अन्तर्द्वन्द्व से है।

अग्निपुराण के अनुसार कहानी का दूसरा गुण है विवाह में कन्याहरण की विपत्तिजनक घटना। यह मान्यता सामन्त-युग की देन जान पड़ती है। सुभद्राहरण, संयोगिताहरण—जैसी घटनाएँ पुरुषार्थ की दृष्टि से विशेष महत्त्व की मानी जाती थीं, पर न केवल राजन्य-वर्ग में वरन् आज की सभ्यता के अनुरूप विकसित समाज में भी इस प्रकार का नारीहरण आज सम्भव नहीं है। हाँ इस स्थल पर यह अवश्य विचारणीय है कि जैसे उस समय की कथाओं में कन्याहरण को नायक की वीरता का एक विशेष अंग माना गया, वैसे ही आज प्रेम-कथाओं में भी उन परिस्थितियों के लिए एक निश्चित स्थान बन गया, जो पहले तो वैवाहिक प्रसंगों, सामाजिक कुरीतियों रूढियों और अन्य परम्पराओं द्वारा एक महाविपत्ति खड़ी कर देती है, पर अन्त में कोई ऐसी घटना या परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है कि विपत्ति के बादल अनायास छूट जाते हैं। भाग्यवादी लेखकों के हाथ में यदि कहीं इस प्रकार की घटनाएँ आ पड़ती है, तो वह नायक की विफलताओं में एक ऐसे हाहाकारपूर्ण असहनीय दारुण दुःख-सागर का चित्र अंकित कर देता है कि पाठक का हृदय सहसा कम्पित हो उठता है। वह बेचारा सोचता रह जाता है कि दुःखों का भोग, जीवन का एक निश्चित चिरन्तन सत्य है। असफलता जीवन में अवश्यम्भावी है और विपत्ति के आकस्मिक हस्तक्षेप और विरोध के आगे व्यक्ति का सारा प्रयत्न, उद्योग और पुरुषार्थ सर्वथा साहाय्यहीन और व्यर्थ है।

समय आये ! क्योंकि वह नित्य और निश्चित है। मनुष्य के जीवन में यदि कभी विपत्ति न आये, तो जीवन की निखिल महत्ता ही मूक और वधिर हो जाय ! मनुष्य के जीवन में यदि दुःख न हों, तो सुख-साफल्य की मन्द-मन्द शान्त प्रवाहमयी मन्दाकिनी भी सूख-सूख कर एक सैकत राजमार्ग वन कर रह जाय ! इसलिए विपत्ति निश्चित है। जीवन को उससे मुक्ति कैसे मिल सकती है! जीवन को समझने के लिए उसकी अपनी उपयोगिता भी तो है।

इस स्थल पर एक कथा-प्रसंग का स्मरण आ रहा है। लगभग एक सहस्र वर्ष पूर्व लायोन्स नगर में, एक जगह पर, एक भोज दिया गया। उसमें वड़े वनी-मानी व्यक्ति सम्मिलित हुए वार्तालाप के सिलसिले में पौराणिक कथाओं के चित्रों के संवंध में विवाद छिड़ गया। अतिथियों में जव यह विवाद शिष्टता और सयम का अतिरेक करने लगा, तो गृहस्वामी ने अपने एक भृत्य को वुलाया और उस चित्र के विषय में समझाने का आदेश किया। भृत्य ने स्पष्ट, संक्षिप्त, सरल और विश्वसनीय भाषा में उन चित्रों का मर्म समझा दिया। उसका उत्तर सुन कर सव लोग आश्चर्य से चकित हो उठे और सारे विवाद का अनायास अन्त हो गया।

उसी समय एक अतिथि ने उस भृत्य के प्रति सम्मान प्रदर्शित करते हुए पूछा— "महाशय, मैं यह जानना चाहता हूँ कि आपने किस स्कूल में शिक्षा प्राप्त की है ?"

नवयुवक भृत्य ने उत्तर दिया—"यों तो मैंने कई स्कूलों में शिक्षा पायी है; परन्तु 'विपत्ति' के स्कूल में मैंने अध्ययन करने में सव से अधिक समय व्यतीत किया है।

यह नवयुवक भृत्य उस समय का एक अत्यन्त दीन-हीन, किन्तु क्रान्तिकारी लेखक जीन जेक रूसो था।

इस प्रकार अग्निपुराण में कथा के उपर्युक्त लक्षण में विपत्ति शब्द अपने स्थान पर वड़ा महत्त्व रखता है। आज की कहानी के मूल

हार के साथ उसका अटूट सम्बन्ध है। निष्पत्ति का स्फुरण ही कहानी का वास्तविक स्वरूप है।

(३)

कहानी को हम कई अंशों में और प्रकार से विभाजित कर सकते हैं। सबसे सहज विभाजन है किसी भी क्रिया की भाँति—प्रारम्भ, मध्य और अन्त। इन्हीं को हम उदय विकास और परम गति भी कह सकते हैं।

पहले प्रारम्भ को लीजिए। कहानी का प्रारम्भिक गुण है उत्सुकता। अर्थात उसका प्रारम्भ ऐसे ढंग से होना चाहिए कि उसका साधारण धर्म स्वाभाविकता और सप्राणता उसमें सर्वथा सुरक्षित हो। ऐसा न प्रतीत हो कि हम कोई (कृत्रिम) कहानी पढ़ रहे हैं, वरन् कुछ ऐसा प्रतीत हो कि अवश्य ही ऐसी घटना कहीं हुई है। कहीं ऐसा संदेह भी न हो कि इसके अन्दर जिन लोगों की बात चल रही है, वे इस जगत के नहीं हैं। मन में कहीं यह शंका भी न उपस्थित हो कि समाज में ऐसे व्यक्ति तो कहीं दिखाई नहीं देते।

प्रायः नये लेखक कहा करते हैं कि कहानी मैं लिखना तो चाहता हूँ पर यही मेरी समझ में नहीं आता कि उसे प्रारम्भ कैसे करूँ। वे इतना भी नहीं सोचते कि कहानी को किसी भी परिस्थिति में प्रारम्भ किया जा सकता है, यथा—

आज जब मेरी आँख खुली तो क्या देखता हूँ कि सामने वाले मकान की छत की मुँडेर पर कबूतर बैठा हुआ गुटर-गूँ कर रहा है।

अब आइए मध्य में। कहानी का मध्य उसकी विकसित अवस्था का द्योतक है। और सब से सुन्दर कहानी वह होती है, जिसकी घटना अथवा समस्या में एक प्रकार का संशय और असमंजस रहता है। उसकी दुविधा में इतनी त्वरा रहती है कि पाठक कहानी पूर्ण होने से पूर्व ही परिणाम जानने के लिए अधीर हो जाता है; किन्तु कथा के मध्य में कहीं कोई ऐसा संकेत भी नहीं रहता कि अन्तिम परिणति के पूर्व कहीं भी उसका भेद खुल सके।

कहानी के अन्त की स्थिति सबसे अधिक सुकुमार होती है। प्रायः बड़े प्रतिष्ठित लेखक सुन्दर-से-सुन्दर कहानी का अन्त करने में गड़बड़ा जाते हैं। बात यह है कि मनुष्य जैसे अन्त के क्षण में परम गति को प्राप्त होता है, वैसे ही कहानी का अन्त उसके अन्तराल में निहित एक ऐसा मर्म स्वर होता है, जो इसी अवसर के लिए सुरक्षित रहता है, उससे पूर्व सर्वथा प्रच्छन्न रखा जाता है। वह ऐसे विस्मय के साथ फूट पड़ता है कि पाठक वाह-वाह कह उठता है। कहानी यदि घटनात्मक होती है, तो पाठक का हृदय इस अखिल सृष्टि और प्रकृति में निहित नियति के कठोर व्यंग से यकायक तिलमिला उठता है। वह मन-ही-मन इस जगत् में चतुर्दिक व्याप्त एक रहस्य का अनुभव करने लगता है, मानों वह अब तक उससे सर्वथा अपरिचित और अनभिज्ञ बना रहा है। इस प्रकार के अन्त में परिणाम प्रायः ऐसा भी होता है कि वह भविष्य के सर्वथा अनिश्चित फलाफल को भोगने के लिए पहले से कहीं अधिक सावधान और सतर्क हो उठता है।

दूसरे ढंग से हम कहानी को—कथानक, पात्र और दृश्य—इन तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं।

कथानक को वस्तु तथा वृत्त के अतिरिक्त अंग्रेजी में प्लाट कहते हैं। कोई भी अप्रत्याशित क्रिया, चाहे वह मन की दुनिया में हो, चाहे भौतिक जगत् में, यदि मनोवेगों और समवेदनाओं का स्पर्श कर के पाठक के मन में परम हार्दिकता के साथ स्पन्दन और एक प्रकार की मधुरता तथा रुचिरता उत्पन्न कर दे, चाहे वह आश्चर्यजनक या आह्लादपूर्ण हो, चाहे आघातमूलक, घटना होती है। इसी घटना की परिस्थिति का दूसरा नाम कथानक है। उसकी संयोजना के मूलाधारों का नाम पात्र और उसकी रूपात्मक गतिविधि और कार्य-कलाप का नाम दृश्य है। कहानी के प्राण को हम कथानक, कर्मेन्द्रियों को पात्र और उसके शरीर को दृश्य कह सकते हैं।

बहुधा हम देखते हैं कि जिस कहानी में कथानक नहीं होता, वह

विकास होती है। और फिर इन्द्रियों के बिना कोई क्रिया सम्भव नहीं, पात्रों के बिना भी कोई खेल हो नहीं सकता, इस प्रकार प्रत्येक क्रिया की स्वाभाविक सत्ता सदा सम्पूर्ण रूप उपस्थित करती रहती है। प्राण और इन्द्रियों का अस्तित्व शरीर के बिना सम्भव नहीं, क्योंकि प्राण और इन्द्रियां आत्मा का शरीर में ही विकास होती है, वैसे ही परि-स्थितियां और घटनाओं का अस्तित्व दृश्य के बिना सम्भव नहीं। इस प्रकार कथानक, पात्र और दृश्य का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। एक के बिना अन्य दोनों व्यर्थ हो जाते हैं।

कहानियां चार प्रकार की होती हैं, घटना-प्रधान, चरित्र-प्रधान, भाव-प्रधान और वर्णनात्मक। जासूसी कहानियों की गणना घटना-प्रधान कहानी में हो जाती है। चरित्र-प्रधान कहानी में चरित्र के विकास पर अधिक ध्यान दिया जाता है। भाव-प्रधान कहानी में घटना और चरित्र पर उतना ध्यान नहीं दिया जाता, जितना भावुकता पर। इसमें यदि कोई घटना भी होती है, तो उसकी परिणति भावुकता से होती है। वर्णनात्मक कहानी में वर्णन की चारुता की ऐतिहासिकता पर विशेष ध्यान रक्खा जाता है।

इस प्रसंग में इतना और स्पष्ट कर देना आवश्यक हो गया है कि घटना-मूलक कहानी के सारे कार्य पात्रों की इन्द्रियां करती हैं। या तो उनके हाथ-पैर काम करते हैं, या वे वार्ता से काम लेते हैं, किन्तु भावात्मक तथा चरित्रात्मक कहानियों के अधिकांश कार्य-कलाप मन-सम्बन्धी होते हैं। मानसिक उद्वेलन और मानसिक-विपर्यय ही उनका मूल स्वर होता है। ऐसी कहानियां मनोविश्लेषण-पद्धति द्वारा लिखी जाती हैं।

यों तो जीवन की प्रत्येक भौतिक क्रिया दृश्यात्मक होती है; किन्तु कहानी दृश्य की जो सत्ता है उसका एक विशेष अभिप्राय है। बात यह है कि एक व्यक्ति जब दूसरे से मिलता है तब उससे कुछ-न-कुछ अवश्य कहता है। इन कथनों में जो विचार-विनिमय

होता है, उसे कहानी की भाषा में कथोपकथन कहते हैं। कथोपकथन-विहीन दृश्य मूक होते हैं। यों मूक दृश्यों की कहानी भी हो सकती है; पर वह केवल वर्णनात्मक होगी। उसमें या तो कार्य-कलाप की चर्चा रहेगी, या सम्बन्धित पात्रों के मत का भेद बतलाया जायगा, पर इस प्रकार के दृश्यों में नाटकीय परिस्थिति का अभाव सर्वथा रहेगा और जिन कहानियों में नाटकीय परिस्थिति का अभाव होता है, उनमें जीवन का कोई भी मनोवेग चरम परिणति तक नहीं पहुँच पाता और कहानी सफलता के चरम बिन्दु को प्राप्त करने से वंचित हो जाती है।

कहानी के शिल्प-विधान की चर्चा के समय, हमें एक बात नहीं भूलनी चाहिए। वह यह कि कहानियों का जन्म पहले हुआ है, उसके शिल्प-विधान की रचनात्मक व्याख्या उसके बाद; अर्थात् कहानी के शिल्प विधानों को मूलरूप से कहानी ने ही जन्म दिया है यह बात दूसरी है कि आज शिल्प-विधानों का कहानी लेखन में नियन्त्रण चलने लगा है।

यहाँ इस कथन का अभिप्राय कथाकार की उस प्रतिभा को स्मरण और स्वीकार करना है, जिसकी रचना से कथा के शिल्प विधान में निरन्तर विकास होता रहता है। रचना का मुख्य गुण शैली है। शैली से ही मनुष्य का व्यक्तित्व प्रकट होता है; इसलिए शैली को मनुष्य का प्रतिरूप माना गया है।[1] शैली वास्तव में उन गुणों का नाम है, जो किसी रचना, शिल्प और व्यक्ति को, उसके विशिष्ट गुण, कर्म और स्वभाव के कारण उसे पूर्वकालीन वर्ग, जाति और श्रेणी से पृथक्, मौलिक और श्रेष्ठ बनाती है। शैली प्रतिभा की वह झलक है, जो किसी रचनाकार को साधारण कोटि से उठाकर असाधारण कोटि में ला कर उसे खड़ा कर देती है। शैली नव-नव कल्पनाओं के भीतर से

---

१. 'स्टाइल इज दि मैन'।

कहानी और काव्य के बीच उस सूक्ष्म प्रयोग का नाम है, जो जीवन के हर क्षेत्र में [illegible] है।

शैली की दृष्टि से यदि हम कहानियों का विभाजन करें, तो वह इस प्रकार हो :—

१. वर्णनात्मक

२. कथोपकथन-प्रधान

३. आत्म-कथन-प्रधान

४. डायरी-प्रधान

५. पत्र-प्रधान

वर्णनात्मक शैली में घटना तथा परिस्थिति का सारा वृत्तान्त इतिहास की भाँति वर्णन कर दिया जाता है। यह वर्णन जितना सजीव और चित्रात्मक होता है, उतना ही रोचक बन जाता है। पहले पहल इसी शैली पर अधिकांश कहानियाँ लिखी जाती थीं; पर इसका अधिक उपयोग अब कहानी की अपेक्षा उपन्यास में अधिक होता है। वातावरण का सजीव चित्र इसी शैली पर आधारित रहता है। भाषा सरल हो और वाक्य बहुत बड़े न हों, भावों में मर्म स्पर्श की क्षमता और विनोद की झलक हो, तो इस शैली की कहानियों में बड़ा प्रभाव उत्पन्न किया जा सकता है।

कथोपकथन कहानी का मूल स्वर होता है। एक विज्ञ का कथन है कि कहानी सुन्दर चाहे जितनी हो, पर कथोपकथन के बिना गूंगी रहती है। कथोपकथन पात्रों के व्यक्तित्व और उनकी संस्कृति के अनुरूप रहना चाहिए, क्योंकि सभी आदमी एक ही प्रकार से नहीं बोलते, सब की भाषा भी एक-सी नहीं होती।

आत्म-कथन-प्रधान शैली में हार्दिकता की प्रधानता रहती है। उसमें सजीवता स्वाभाविक रूप से स्वतः बढ़ जाती है पाठक के मन से यह बात हटाये नहीं हटती कि लेखक मानो अपना ही जीवन चरित्र लिख रहा है। यही इस शैली का सबसे बड़ा गुण है, और यही इसकी

सबसे बड़ी दुर्बलता भी है। बात यह है कि हार्दिकता के कारण जहाँ इस शैली की कहानी अपेक्षाकृत अधिक सजीव हो जाती है, वहाँ प्रायः ऐसा भी होता है कि भिन्न प्रकार का चरित्र निर्वाह करते-करते लेखक अनायास अपनी प्रवृत्ति, अपना स्वभाव और अपनी रुचियों की झलक डालकर चरित्र-चित्रण की एकनिष्ठ सफलता के लिए हानिकर और अविश्वसनीय बन जाता है।

डायरी प्रणाली से लिखी जाने वाली कहानियाँ रोचकता की दृष्टि से आत्म-कथा शैली का प्रभाव पा जाती हैं। इस प्रकार की कहानियों में बहुधा उसी नायक के जीवन की झलक मिलती है, जो या तो इस जगत् से विदा ले चुकता है, या इस संसार के सामाजिक संघर्ष से ही अपने-आप को दूर फेंक देता है। जिस कथा को उसे कर्म की लकीरों से लिखना चाहिए, उसे वह कागज पर उतार कर सन्तोष कर लेता है। इस शैली में वही कहानियाँ अधिक सफल होती हैं, जिन का अन्त दुःखमय होता है। इस की सुखान्त कहानियाँ बहुधा निर्जीव और हलकी हैं। डायरी के अपने विशिष्ट लक्षणों के निर्वाह में यदि वे सफल भी हुईं, तो घटनाओं की संयोजना में गड़बड़ कर अपना प्रभाव खो बैठती हैं।

पत्र–शैली की कहानी में एक तो दृश्यात्मक गुणों का अभाव रहता है, दूसरे नाटकीय प्रभाव भी उस में उतनी रुचिरता से नहीं आता, जितना वर्णनात्मक और कथोपकथन की मिश्रित शैली वाली कहानी में। विश्व-साहित्य में आज जो कहानियाँ अमर मानी जाती हैं, वे प्रायः इसी मिश्रित शैली की देन हैं।

विषय की दृष्टि से अब तक निम्न प्रकार की कहानियाँ लिखी गयी हैं —

१. प्रेम-कहानियाँ

२. ऐतिहासिक कहानियाँ

३. जासूसी कहानियाँ

४. जीवन-रहस्य पर प्रकाश फेंकने वाली, आश्चर्य कहानियाँ
५ व्यंग तथा हास्य कहानियाँ
६ आदर्श कहानियाँ
७. मनोवैज्ञानिक कहानियाँ

कहानी का मूल स्वर प्रेम है। प्रेम पर किसी का हस्तक्षेप और नियन्त्रण नहीं चलता। प्रेम की महत्ता प्राणों के मूल्य से भी तौली नहीं जा सकती। इसलिए लोग प्राण देकर भी प्रेम की रक्षा करते है। प्रेम एक ईश्वरीय देन है, वह सब को नही मिलता। विरले ही इस अमृतपान का अवसर पाते है। प्रेम बड़ा जिद्दी और निष्ठुर भी होता है क्षमा, दया और उदारता, सहानुभूति और शिष्टाचार उसे स्पर्श नहीं कर पाते। वह क्रय-विक्रय की सीमाओं से परे रहता है। वह कलाकार ब्रह्मा का एक सर्वव्यापक रूप है। कोई प्राणी उस से वंचित नही रहता वासना से मिलने मे उसे आपत्ति नही, पर वह उसके साथ रह नही सकता। वह देखता सब को है; पर उसके आँखें नहीं होती। उसके अनेक मार्ग है, अनेक रूप और स्वर है। उसकी अँगुली भी पकड़ने को मिल जाय, तो वह ईश्वर से मिला सकता है। विश्व के कहानी साहित्य से यदि प्रेम-कहानियाँ पृथक कर दी जायँ, तो जो कुछ शेष रह जायगा, वह एक प्रकार से निष्प्राण होगा। इसीलिए सभी समुन्नत भाषाओं मे आज प्रेम की कहानियों की धूम है।

ऐतिहासिक कहानियो का मुख्य सम्बन्ध काल से रहता है। किसी भी समय और किसी भी विषय की कहानी युग-परिवर्तन के पश्चात् कालान्तर में ऐतिहासिक बन जाती है।

जासूसी कहानी का विषय उसके नाम ही से प्रकट है। हत्याओं, अग्निकाण्डों, चोरियों, विविध अपराधजन्य स्थितियों तथा दुर्घटनाओं मे जिन लोगो का प्रमुख हाथ रहता है, उनकी खोज और छानबीन ही इन कहानियो का उद्देश्य है।

विश्व के कथा-साहित्य में प्रेम - कहानियों के बाद जिन कहानियों

की गणना अधिक की जाती है, वे जीवन-रहस्य की आश्चर्य कहानियाँ होती हैं। जगत् में नाना प्रकार के व्यक्ति हैं। रूप, आकार-प्रकार, भाषा और संस्कृति की दृष्टि से यों भी उनमें परस्पर बड़ा अन्तर होता है। फिर गुण, कर्म और स्वभाव को लेकर उन की भिन्नता और भी बढ़ जाती है। इतने पर भी मनुष्य सामाजिक प्राणी है। एक का दूसरे के साथ मिलना-जुलना, जीवन-व्यापारों में सहयोग करना पारस्परिक विश्वास, एक को दूसरे पर निर्भर रहना आदि ऐसी-वृत्तियाँ हैं, जो मनुष्य के लिए सर्वथा स्वाभाविक है। उसके बाद स्वार्थ-साधन, आडम्बर भ्रम-जाल, षड्यन्त्र के पड़ोस में चुपचाप बैठी निःश्वास भरती सहृदयता, उदारता, क्षमा, दया और नाना प्रकार की प्रति-क्रियाओं में विजड़ित, संत्रस्त, क्षिप्त आज का सामाजिक व्यक्ति मन, वचन और कर्म की एकता में कहाँ जा पहुँचा है, इन्हीं बातों, विषयों, उलझनों और समस्याओं का निरूपण इस प्रकार की कहानियों का मुख्य क्षेत्र होता है।

व्यंग्य तथा हास्य की कहानियों का जीवन और समाज के नव-निर्माण और विकास मे बड़ा हाथ रहता है। शरीर उसका मनोरंजक अवश्य होता है, पर उस के भीतर समाज की आलोचना की जो एक सजग भूमिका रहती है, वह कड़वी औषधि की भाँति तीखी, तीव्र और कटु होती है। रचनाकार चाहे, तो ऐसी कथाओं द्वारा समाज का मानसिक ताप दूर कर के उस का कड़ा उपकार कर सकता है; पर इस प्रकार की कहानियों में दो बातों का ध्यान रखना बहुत आवश्यक है—

१. वे अश्लील और यौन-परक न होनी चाहिए।

२. व्यक्तिगत आक्षेप से उन्हें सदा दूर रखना चाहिए।

आदर्श कहानियों से यहाँ अभिप्राय उन कहानियों से है, जिन के भीतर से किसी नीति, सिद्धान्त और आदर्श-विशेष की मन्द-मन्द गन्ध वायु-निःसृत होती रहती है। ऐसी कहानियाँ उद्देश्यमूलक होती हैं। व्यक्ति और समाज की साधारण भूलों, अन्य परम्पराओं, प्रतिक्रियाओं, रूढ़ियों तथा जीवन में

सात आने मे तेरा कुरता बन जायगा। अब ठंडक पड़ने लगी है।" उसने ठुनकते हुए कहा —"नहीं, आज मुझे दो, पैसा दो, मैं कचालू खाऊँगा। वह देखो, उस पटरी पर बिक रहा है।" बालक के मुँह और आँख में पानी भरा था। दुर्भाग्य से वुड्ढा उसे पैसा नही दे सकता था। वह न देने के लिए हठ करता ही रहा; परन्तु बालक ही की विजय हुई। वह पैसा लेकर सड़क की उस पटरी पर चला। उसके बेड़ी से जकड़े हुए पैर पैंतरा काट कर चल रहे थे। जैसे–युद्ध-विजय के लिए।

नवीन बाबू ४० मील की स्पीड से मोटर अपने हाथ से दौड़ा रहे थे। दर्शकों के चीत्कार से बालक गिर पड़ा। भीड़ दौड़ी, मोटर निकल गई और वह बुड्ढा विकल हो रोने लगा––अन्धा किधर जाय!

एक ने कहा––"चोट अधिक नहीं।"

दूसरे ने कहा––"हत्यारे ने बेडी पहना दी है, नही तो क्यों चोट खाता।"

वुड्ढे ने कहा––"काट दो बेड़ी मुझे न चाहिए।"

और मैने हतबुद्धि होकर देखा कि बालक के प्राण-पखेरू अपनी बेडी काट चुके थे।

०

बूढ़ी काकी

प्रेमचन्द

बुढ़ापा बहुधा बचपन का पुनरागमन हुआ करता है। बूढ़ी काकी में जिह्वा-स्वाद के सिवा और कोई चेष्टा न थी और न अपने कष्टों की ओर आकर्षित करने का रोने के अतिरिक्त कोई दूसरा सहारा ही। समस्त इन्द्रियां नेत्र, हाथ और पैर जवाब दे चुके थे। पृथ्वी पर पड़ी रहतीं और जब घर वाले कोई बात उनकी इच्छा के प्रतिकूल करते या भोजन का समय टल जाता, उसका परिमाण पूर्ण न होता, अथवा बाजार से कोई वस्तु आती और उन्हें न मिलती, तो रोने लगती थीं। उनका रोना-सिसकना साधारण रोना न था, वह गला फाड़-फाड़ कर रोती थीं।

उनके पति देव को स्वर्ग सिधारे कालान्तर हो चुका था। बेटे तरुण हो-होकर चल बसे थे। अब एक भतीजे के सिवाय और कोई न था। उसी भतीजे के नाम उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति लिख दी थी। भतीजे ने सम्पत्ति लिखाते समय तो खूब लम्बे-चौड़े वादे किये; परन्तु वे सब वादे केवल कुली डिपो के दलालों के दिखाए हुए सब्ज बाग थे। यद्यपि उस सम्पत्ति की वार्षिक आय डेढ़-दो सौ रुपये से कम न थी, तथापि बूढ़ी काकी को पेट-भर भोजन भी कठिनाई से मिलता था। उनमें उनके भतीजे पण्डित बुद्धिराम का अपराध था अथवा उनकी अर्द्धांगिनी श्रीमती रूपा का, इसका निर्णय करना सहज नहीं। बुद्धिराम स्वभाव के सज्जन थे; किन्तु उसी समय तक, जब तक कि उनके कोष पर कोई आँच न आए। रूपा स्वभाव से तीव्र थी सही, पर ईश्वर से डरती थी। अतएव, बूढ़ी काकी को उसकी तीव्रता उतनी न खलती थी, जितनी बुद्धिराम की भलमनसाहत।

बुद्धिराम को कभी-कभी अपने अत्याचार का खेद होता था। वह

विचारते कि इसी सम्पत्ति के कारण मैं इस समय भलामानस बना बैठा हूँ। यदि मौखिक आश्वासन और सूखी सहानुभूति से स्थिति में सुधार हो सकता, तो उन्हें कदाचित् कोई आपत्ति न होती, परन्तु विशेष व्यय का भय उनकी सुचेष्टा को दबाये रखता था। यहाँ तक कि यदि द्वार पर कोई भला आदमी बैठा होता और बूढ़ी काकी उस समय अपना राग अलापने लगतीं, तो वह आग हो जाते और घर में आकर उन्हें जोर से डाँटते। लड़कों को बुड्ढों से स्वाभाविक विद्वेष होता ही है और फिर जब माता-पिता का यह रंग देखते, तो बूढ़ी काकी को और भी सताया करते। कोई चुटकी काटकर भागता, कोई उन पर पानी की कुल्ली कर देता। काकी चीख मार कर रोती, परन्तु यह बात प्रसिद्ध थी कि वह केवल खाने के लिए रोती है, अतएव उनके सन्ताप और आर्तनाद पर कोई ध्यान नहीं देता था। हाँ काकी कभी क्रोधातुर होकर बच्चों को गालियाँ देने लगती, तो रूपा घटना स्थल पर अवश्य आ पहुँचती। इस भय से काकी अपनी जिह्वा-कृपाण का कदाचित् ही प्रयोग करती थी, यद्यपि उपद्रव-शान्ति का यह उपाय रोने से कहीं अधिक उपयुक्त था।

सम्पूर्ण परिवार में यदि काकी से किसी को अनुराग था, तो यह बुद्धिराम की छोटी लड़की लाड़ली थी। लाड़ली अपने दोनों भाइयों के भय से अपने हिस्से की मिठाई, चबेना बूढी काकी के पास बैठकर खाया करती थी। यही उसका रक्षागार था और यद्यपि काकी की शरण उनकी लोलुपता के कारण बहुत महँगी पड़ती थी, तथापि भाइयों के अन्याय से कहीं सुलभ थी। इसी स्वार्थानुकूलता ने उन दोनों में प्रेम और सहानुभूति का आरोपण कर दिया था।

रात का समय था। बुद्धिराम के द्वार पर शहनाई बज रही थी और गाँव के बच्चों का झुण्ड विस्मयपूर्ण नेत्रों से गाने का रसास्वादन कर रहा था। चारपाइयों पर मेहमान विश्राम करते हुए नाइयों से मुक्कियाँ लगवा रहे थे। समीप ही खड़ा हुआ भाट विरुदावली सुना रहा था और कुछ भावज्ञ मेहमानों के "वाह, वाह" पर ऐसा खुश हो रहा था, मानो इस वाह-वाह

का यथार्थ में वही अधिकारी है। दो-एक अँगरेजी पढ़े हुए नवयुवक इन व्यवहारों से उदासीन थे। वे इस गँवार-मण्डली में बोलना अथवा सम्मिलित होना, अपनी प्रतिष्ठा के प्रतिकूल समझते थे।

आज बुद्धिराम के बड़े लड़के सुखराम का तिलक आया है। यह उसी का उत्सव है। घर के भीतर स्त्रियाँ गा रही थीं और रूपा मेहमानों के लिए भोजन के प्रबन्ध में व्यस्त थी। भट्ठियों पर कड़ाह चढ़े थे। एक में पूड़ियाँ-कचौड़ियाँ निकल रही थी। दूसरे में अन्य पकवान बन रहे थे। एक बड़े हण्डे में मसालेदार तरकारी पक रही थी। घी और मसाले की क्षुधावर्धक सुगन्धि चारों ओर फैली हुई थी।

बूढ़ी काकी कोठरी मे शोकमय विचार की भाँति बैठी हुई थी। वह स्वाद-मिश्रित सुगन्ध उन्हें बेचैन कर रही थी। वे मन-ही-मन विचार कर रही थीं, सम्भवतः मुझे पूड़ियाँ न मिलेंगी। इतनी देर हो गई, कोई भोजन लेकर नही आया, मालूम होता है, सब लोग भोजन कर चुके। मेरे लिए कुछ न बचा। यह सोचकर उन्हें रोना आया; परन्तु अशकुन के भय से वह न रो सकीं।

"अहा ! कैसी सुगन्धि है ! अब मुझे कौन पूछता है ? जब रोटियों ही के लाले पड़े है तब ऐसे भाग्य कहाँ कि भर-पेट पूड़ियाँ मिले !" यह विचार कर उन्हे रोना आया, कलेजे में एक हूक-सी उठने लगी ; परन्तु रूपा के भय से उन्होंने फिर भी मौन धारण कर लिया।

बूढ़ी काकी देर तक इन्ही दुःखदायक विचारों में डूबी रही। घी और मसालों की सुगन्ध रह-रहकर मन को आपे से बाहर किये देती। मुँह में पानी भर-भर आता था। पूड़ियो का स्वाद स्मरण करके हृदय में गुदगुदी होने लगती थी। किसे पुकारूँ, आज लाडली बेटी भी नही आई। दोनों छोकड़े सदा दिक किया करते है। आज उनका भी कही पता नहीं। कुछ तो मालूम होता कि क्या बन रहा है ?

बूढ़ी काकी की कल्पना में पूड़ियों की तस्वीर नाचने लगी। खूब लाल-लाल, फूली-फूली, नरम-नरम होंगी; रूपा ने भली-भाँति मोयन दिया

होगा। कचौड़ियों में अजवाइन और इलायची की महक आ रही होगी। एक पूरी मिलती तो जरा हाथ में लेकर देखती। क्यों न चलकर कड़ाह के सामने ही बैठें। पूड़िया छन-छन कर तैरती होंगी। फूल हम घर में भी सूंघ सकते हैं; परन्तु वाटिका में और कुछ बात होती है। इस प्रकार निर्णय करके बूढ़ी काकी उकड़ूं बैठकर हाथों के बल सरकती हुई बड़ी कठिनाई से चौखट से उतरी और धीरे-धीरे रेंगती हुई कड़ाह के पास जा बैठी। यहाँ आने पर उन्हें उतना ही धैर्य हुआ, जितना भूखे कुत्ते को खाने वाले के सम्मुख बैठने में होता है।

उस समय रूपा कार्य-भार में उद्विग्न हो रही थी। कभी इस कोठे में जाती, कभी उस कोठे में कभी कड़ाही के पास जाती, कभी भण्डार में जाती। किसी ने बाहर से आकर कहा-महाराज ठण्डाई माँग रहे हैं। ठण्डाई देने लगी। इतने में फिर किसी ने आकर कहा-भाट आया है, उसे कुछ दे दो। भाट के लिए सीधा निकाल रही थी कि एक तीसरे आदमी ने आकर पूछा—अभी भोजन तैयार होने में कितना विलम्ब है? जरा ढोल-मजीरा उतार दो। बेचारी अकेली स्त्री दौड़ती-दौड़ती व्याकुल हो रही थी। झुंझलाती थी, कुढ़ती थी; परन्तु क्रोध प्रकट करने का अवसर न पाती थी। भय होता, कहीं पड़ोसिन यह न कहने लगें कि इतने ही में उबल पड़ी, प्यास से स्वयं उसका कण्ठ सूख रहा था। गर्मी के मारे फुंकी जाती थी; परन्तु इतना अवकाश भी नहीं था कि जरा पानी पी ले अथवा पंखा लेकर झले। यह भी खटका था कि जरा आँख हटी और चीजों की लूट मची। इस अवस्था में उसने बूढ़ी काकी को कड़ाही के पास बैठा देखा, तो जल गई। क्रोध न रुक सका। इसका भी ध्यान न रहा कि पड़ोसिनें बैठी हुई है, मन में क्या कहेंगी? पुरुषों में लोग सुनेंगे तो क्या कहेंगे? जिस प्रकार मेंढक केंचुए पर झपटता है, उसी प्रकार वह बूढ़ी काकी पर झपटी और उन्हें हाथों से झिंझोड़ कर बोली——ऐसे पेट में आग लगे, पेट है या भाड़? कोठरी में बैठते क्या दम घुटता था? अभी मेहमानों ने नहीं खाया, भगवान का भोग नहीं लगा तब तक धैर्य न हो सका। आकर छाती पर सवार हो गई। जल जाय ऐसी

जीभ। दिन भर खाती न होती, तो न जाने किसकी हाँड़ी में मुँह डालती ? गाँव देखेगा, तो कहेगा बुढ़िया भरपेट खाने को नही पाती, तव तो इस तरह मुँह वाए फिरती है। डाइन न मरे न माँचा छोड़े। नाम वेचने पर लगी है। नाक कटवाकर दम लेगी। इतना ठूंसती है; न जाने कहाँ भस्म हो जाता है? लो! भला चाहती हो तो कोठरी में जाकर वैठो, जव घर के लोग खाने लगेंगे, तव तुम्हें भी मिलेगा। तुम कोई देवी नहीं हो कि चाहे किसी के मुँह में पानी न जाय : परन्तु तुम्हारी पूजा पहले हो जाय। बूढ़ी काकी ने सिर न उठाया, न रोई, न वोली। चुपचाप रेंगती हुई अपनी कोठरी में चली गई। आघात ऐसा कठोर था कि हृदय और मस्तिष्क की सम्पूर्ण शक्तियाँ, सम्पूर्ण विचार और सम्पूर्ण भार उसी ओर आकर्षित हो गये थे। नदी में जव कगार का कोई वृहद् खण्ड कट कर गिरता है, तो आस-पास का जल-समूह चारों ओर से उसी स्थान को पूरा करने के लिए दौड़ता है।

भोजन तैयार हो गया। आँगन में पत्तल पड़ गये। मेहमान खाने लगे। स्त्रियों ने जेवनार-गीत गाना आरम्भ कर दिया। मेहमानों के नाई और सेवकगण भी उसी मण्डली के साथ, किन्तु कुछ हट कर भोजन करने वैठे थे। परन्तु सभ्यतानुसार जव तक सव के सव खा न चुके, कोई उठ नही सकता था। दो एक मेहमान, जो कुछ पढ़े-लिखे थे; सेवकों के दीर्घाहार पर झुँझला रहे थे, वे इस वन्धन को व्यर्थ और वे-सिर-पैर की वात समझते थे।

बूढ़ी काकी अपनी कोठरी में जाकर पश्चात्ताप कर रही थीं कि मैं कहाँ से वहाँ गई। उन्हे रूपा पर क्रोध नही था। अपनी जल्दवाजी पर दुःख था। सच ही तो है, जव तक मेहमान लोग भोजन न कर चुकेंगे, घर वाले कैसे खाएँगे। मुझ से इतनी देर नहीं रहा गया। सव के सामने पानी उतर गया। अव जव तक कोई वुलाने न आएगा, न जाऊँगी।

मन-ही-मन इसी प्रकार विचार कर वह वुलावे की प्रतीक्षा करने लगी। परन्तु घी की रुचिकर सुवास वड़ी ही धैर्य परीक्षक प्रतीत हो रही थी। उन्हें एक-एक पल एक-एक युग के समान मालूम होता था। अव पत्तल विछ गये

होंगे। अब मेहमान आ गये होंगे। लोग हाथ-पैर धो रहे हैं, नाई पानी दे रहा है। मालूम होता है लोग खाने बैठ गये। जेवनार गाया जा रहा है, यह विचार कर वह मन को बहलाने के लिए लेट गईं। धीरे-धीरे एक गीत गुनगुनाने लगीं। उन्हें मालूम हुआ कि मुझे गाते देर हो गई। क्या इतनी देर तक लोग भोजन कर ही रहे होंगे? किसी की आवाज नहीं सुनाई देती। अवश्य ही लोग खा-पीकर चले गये। मुझे कोई बुलाने नही आया। रूपा चिढ गई है। क्या जाने न बुलाए, सोचती हो कि आप आवेंगी, वह कोई मेहमान तो हैं नही, जो उन्हे बुलाऊँ। बूढी काकी चलने के लिए तैयार हुईं। यह विश्वास कि एक मिनट में पूड़ियाँ और मसालेदार तरकारियाँ सामने आएँगी, उनकी स्वादेन्द्रियो को गुदगुदाने लगी। उन्होने मन मे तरह-तरह के मनसूबे बांधे—पहले तरकारी से पूड़ियाँ खाऊँगी, फिर दही और शक्कर से, कचौरियाँ रायते के साथ मजेदार मालूम होंगी। चाहे कोई बुरा माने चाहे भला, मैं तो माँग-माँग कर खाऊँगी। यही न लोग कहेगे कि इन्हें विचार नही? कहा करें, इतने दिनो के वाद पूड़ियाँ मिल रही हैं, तो मुँह जूठा करके थोड़े ही उठ जाऊँगी।

वह उकड़ूँ बैठ कर हाथों के बल खिसकती आँगन मे आईं, परन्तु हाय दुर्भाग्य! अभिलाषा ने अपने पुराने स्वभाव के अनुसार समय की मिथ्या कल्पना की थी। मेहमान-मण्डली अभी बैठी हुई थी। कोई खाकर उँगलियाँ चाटता था, कोई तिर्छे नेत्रों से देखता था कि लोग अभी खा रहे है या नही? कोई इस चिन्ता मे था कि पत्तल पर पूड़ियाँ छूटी जाती है, किसी तरह उन्हे भीतर रख लेता। कोई दही खाकर जीभ चटकारता था, परन्तु दूसरा दोना माँगते संकोच करता था। इतने मे बूढ़ी काकी रेंगती हुई उनके बीच में जा पहुँची। कई आदमी चौंक कर उठ खड़े हुए। पुकारने लगे—अरे यह बुढिया कौन है? यह कहां से आ गई? देखो किसी को छू न ले।

पण्डित बुद्धिराम काकी को देखते ही क्रोध से तिलमिला गये। पूड़ियो का थाल लिये खड़े थे। थाल को जमीन पर पटक दिया और जिस प्रकार निर्दयी महाजन अपने किसी बेईमान और भगोड़े असामी को देखते ही झपट कर

उसका टेंटुआ पकड़ लेता है, उसी तरह लपक कर उन्होंने बूढ़ी काकी के दोनों हाथ पकड़े घसीटते हुए लाकर उन्हें अंधेरी कोठरी में धम से पटक दिया। आशारूपी वाटिका लू के एक ही झोंके से नष्ट-विनष्ट हो गई।

मेहमानों ने भोजन किया। घरवालों ने भोजन किया, बाजेवाले, धोबी, चमार भी भोजन कर चुके; परन्तु बूढ़ी काकी को किसी ने न पूछा। बुद्धिराम और रूपा दोनों ही बूढ़ी काकी को उसकी निर्लज्जता के लिए दण्ड देने का निश्चय कर चुके थे। उन के बुढ़ापे पर, दीनता पर, हत-ज्ञान पर किसी को करुणा न आती थी। अकेली लाड़ली उनके लिए कुढ़ रही थी।

लाड़ली को काकी से अत्यन्त प्रेम था। बेचारी भोली लड़की थी। बाल-विनोद और चंचलता की उस में गन्ध तक न थी। दोनों बार जब उसके माता-पिता ने काफी निर्दयता से घसीटा, तो लाड़ली का हृदय ऐंठ कर रह गया। वह झुँझला रही थी कि ये लोग काकी को क्यों बहुत-सी पूड़ियाँ नहीं दे देते? क्या मेहमान सब-की-सब खा जायेंगे? और यदि काकी ने मेहमानों के पहले खा लिया, तो क्या बिगड़ जायगा? वह काकी के पास जा कर उन्हें धैर्य देना चाहती थी; परन्तु माता के भय से न जाती थी। उसने अपने हिस्से की पूड़ियाँ बिल्कुल न खाई थी। अपनी गुड़ियों की पिटारी में बन्द कर रक्खी थीं। वह उन पूड़ियों को काकी के पास ले जाना चाहती थी। उस का हृदय अधीर हो रहा था। बूढ़ी काकी मेरी बात सुनते ही उठ बैठेंगी। पूड़ियाँ देख कर कैसी प्रसन्न होंगी! मुझे खूब प्यार करेंगी।

रात के ग्यारह बज गये। रूपा आँगन में पड़ी सो रही थी। लाड़ली की आँखों में नींद न आती थी। काकी को पूड़ियाँ खिलाने की खुशी उसे सोने न देती थी। उसने गुड़ियों की पिटारी सामने ही रक्खी थी। जब विश्वास हो गया कि अम्मा सो रही हैं तब वह चुपके से उठी और विचारने लगी, कैसे चलूँ। चारों ओर अँधेरा था। केवल चूल्हे में

आग थी; और चमक रही थी। चूल्हों के पास एक कुत्ता लेटा हुआ था। लाड़ली की दृष्टि द्वार के सामने नीम की ओर गई। उसे मालूम हुआ कि उस पर हनुमान जी बैठे हुए है। उनकी पूँछ, उनकी गदा; सब स्पष्ट दिखलाई दे रही थी। मारे भय के उसने आँखें बन्द कर ली। इतने में कुत्ता उठ बैठा, लाड़ली को ढाढस हुआ। कई सोए मनुष्यों के बदले एक जागता हुआ कुत्ता उसके लिए अधिकतर धैर्य का कारण हुआ। उसने पिटारी उठाई और बूढी काकी की कोठरी की ओर चली।

बूढ़ी काकी को केवल इतना स्मरण था कि किसी ने मेरे हाथ पकड़ कर घसीटे, फिर ऐसा मालूम हुआ कि जैसे कोई पहाड़ पर उठाए लिये जाता है। उनके पैर बार-बार पत्थरो से टकराए, तब किसी ने उन्हें पहाड़ पर से पटका, और ये मूर्छित हो गईं।

जब वे सचेत हुईं, तो किसी की जरा भी आहट न मिलती थी। समझा कि सब लोग खा-पीकर सो गये और उनके साथ मेरी तकदीर भी सो गई। रात कैसे कटेगी? क्या खाऊँ, पेट में अग्नि धधक रही है! हा! किसी ने मेरी सुधि न ली। क्या मेरा ही पेट काटने से धन जुट जायगा! इन लोगों को इतनी भी दया नही आती कि न जाने बुढ़िया कब मर जाय? उसका जी क्यो दुखावे? मैं अन्धी-अपाहिज ठहरी, न कुछ सुनू न बूझू, यदि आँगन में चली गई तो क्या बुद्धिराम से इतना कहते न बनता था कि काकी अभी लोग खा रहे हैं, फिर आना। मुझे घसीटा, पटका। उन्हीं पूड़ियों के लिए रूपा ने सबके सामने गालियाँ दीं। उन्ही पूड़ियों के लिए इतनी दुर्गति करने पर भी उसका पत्थर का कलेजा न पसीजा। सबको खिलाया, मेरी बात तक न पूछी। जब तब ही न दी तब अब क्या देगी?

यह विचार कर काकी निराशामय सन्तोष के साथ लेट गई। ग्लानि से गला भर आता था; परन्तु मेहमानों के भय से रोती न थी।

सहसा उनके कानों में आवाज आई—"काकी उठो, मैं पूड़ियां लाई हूँ।"

काकी ने लाड़ली की बोली पहचानी। चटपट उठ बैठी। दोनों हाथों से लाड़ली को टटोला और उसे गोद में बैठा लिया।

लाड़ली ने पूड़ियाँ निकाल कर दीं। काकी ने पूछा—"क्या तुम्हारी अम्मा ने दी हैं?" लाड़ली ने कहा—"नहीं, यह मेरे हिस्से की हैं।" काकी पूड़ियों पर टूट पड़ी। पाँच मिनट में पिटारी खाली हो गई।

लाड़ली ने पूछा—"काकी, पेट भर गया?" जैसे थोड़ी-सी वर्षा ठंडक के स्थान पर और भी गर्मी पैदा कर देती है; उसी भाँति इन थोड़ी-सी पूड़ियों ने क्षुधा और इच्छा को उत्तेजित कर दिया था। बोली—"नहीं, बेटी, जाकर अम्मा से और माँग लाओ।" लाड़ली ने कहा—"अम्मा सोती हैं, जगाऊँगी तो मारेंगी।"

काकी ने पिटारी को फिर टटोला। उस में कुछ खुचँन गिरे थे। उन्हें निकाल कर वे खा गईं। बार-बार होंठ चाटती थीं। चटखारें भरती थीं।

हृदय मसोस रहा था कि पूड़ियाँ कैसे पाऊँ। सन्तोष-सेतु जब टूट जाता है, तब इच्छा का बहाव अपरिमित हो जाता है। मतवालों को मद का स्मरण कराना, उन्हें मदान्ध बनाता है। काकी का अधीर मन इच्छा के प्रबल प्रवाह में बह गया। उचित और अनुचित का विचार जाता रहा। वे कुछ देर तक उस इच्छा को रोकती रहीं। सहसा लाड़ली से बोली—"मेरा हाथ पकड़ कर वहाँ ले चलो, जहाँ मेहमानों ने बैठकर भोजन किया है।"

लाड़ली उनका अभिप्राय समझ न सकी। उसने काकी का हाथ पकड़ा और ले जाकर जूठे पत्तलों के पास बिठला दिया। दीन, क्षुधातुर हत-ज्ञान बुढ़िया पत्तलों से पूड़ियों के टुकड़े चुन-चुनकर भक्षण करने लगी! ओह! दही कितना स्वादिष्ट था, कचौरियाँ कितनी सलोनी, खस्ता कितना सुकोमल। काकी बुद्धिहीन होते हुए भी इतना जानती थी कि मैं वह काम कर रही हूँ, जो मुझे कदापि न करना चाहिए। मैं दूसरों के जूठे पत्तल चाट रही हूँ। परन्तु बुढ़ापा तृष्णा-रोग का अन्तिम

समय है, जब सम्पूर्ण इच्छाएँ एक ही केन्द्र पर आ सकती हैं। बूढ़ी काकी में यह केन्द्र उनकी स्वादेन्द्रिय था।

ठीक उस समय रूपा की आँखें खुलीं। उसे मालूम हुआ कि लाड़ली मेरे पास नहीं है। वह चौंकी, चारपाई के इधर-उधर ताकने लगी कि कहीं नीचे तो नहीं गिर पड़ी। उसे वहाँ न पाकर वह उठ बैठी, तो क्या देखती है कि लाड़ली जूठे पत्तलों के पास चुपचाप खड़ी है और बूढ़ी काकी पत्तलों पर से पूड़ियों के टुकड़े उठा-उठाकर खा रही है। रूपा का हृदय सन्न हो गया। किसी गाय की गर्दन पर छुरी चलते देखकर जो अवस्था उसकी होती, वही उस समय हुई। एक ब्राह्मणी दूसरों का जूठा पत्तल टटोले, इससे अधिक शोकमय दृश्य असम्भव है। पूड़ियों के कुछ ग्रासों के लिए उसकी चचेरी सास ऐसा पतित और निकृष्ट कर्म कर रही है! यह वह दृश्य था, जिसे देखकर देखने वालों के हृदय काँप उठते हैं। ऐसा प्रतीत होता मानों जमीन रुक गई, आसमान चक्कर खा रहा है, संसार पर कोई नयी विपत्ति आने वाली है। रूपा को क्रोध न आया। शोक के सम्मुख क्रोध कहाँ? करुणा और भय से उसकी आँखें भर आईं। इस अधर्म के पाप का भागी कौन है? उसने सच्चे हृदय से गगन-मण्डल की ओर हाथ उठाकर कहा—"परमात्मा, मेरे बच्चों पर दया करो, इस अधर्म का दण्ड मुझे मत दो, नहीं तो हमारा सत्यानाश हो जायगा।"

रूपा को अपनी स्वार्थपरता और अन्याय इस प्रकार प्रत्यक्ष रूप में कभी न देख पड़ा था। वह सोचने लगी—हाय! कितनी निर्दय हूँ। जिसकी सम्पति से मुझे दो सौ रुपया वार्षिक आय हो रही है, उसकी यह दुर्गति! और मेरे कारण! हे दयामय भगवान्! मुझसे बड़ी भारी भूल हुई है, मुझे क्षमा करो। आज मेरे बेटे का तिलक था। सैकड़ों मनुष्यों ने भोजन पाया। मैं उनके इशारों की दासी बनी रही। अपने नाम के लिए सैकड़ों रुपये व्यय कर दिए; परन्तु जिसकी बदौलत हजारों रुपये खाए, उसे इस उत्सव में भी भरपेट भोजन न दे सकी। केवल इसी कारण तो कि वह वृद्धा है, असहाय है।

रूपा ने दिया जलाया, अपने भण्डार का द्वार खोला और एक थाली में सम्पूर्ण सामग्रियाँ सजाकर लिए हुए काकी की ओर चली।

आधी रात जा चुकी थी, आकाश पर तारों के थाल सजे हुए थे और उन पर बैठे हुए देवगण स्वर्गीय पदार्थ सजा रहे थे; परन्तु उनमें किसी को वह परमानन्द प्राप्त न हो सकता था, जो बूढ़ी काकी को अपने सम्मुख थाल देखकर प्राप्त हुआ। रूपा ने कण्ठावरुद्ध स्वर में कहा—"काकी उठो, भोजन कर लो। मुझसे आज बड़ी भूल हुई, उसका बुरा न मानना। परमात्मा से प्रार्थना कर दो कि वह मेरा अपराध क्षमा कर दें।"

भोले-भाले बच्चे की भाँति, जो मिठाइयाँ पाकर मार और तिरस्कार सब भूल जाता है, बूढ़ी काकी बैठी हुई खाना खा रही थी। उनके एक-एक रोएँ से सच्ची सदिच्छाएँ निकल रही थीं और रूपा बैठी इस स्वर्गीय दृश्य का आनन्द लूटने में निमग्न थी।

दही की हाँड़ी

चतुरसेन शास्त्री

सत्रहवीं शताब्दी खतम हो रही थी और उसके साथ राजपूताने का ओजपूर्ण जीवन भी अस्तंगत हो रहा था। बादशाह आलमगीर दक्षिण के कभी समाप्त न होने वाले युद्धों में फँसा था। वह वृद्ध हो गया था; और रोग उसे घेरे रहते थे। वह अपने ५० वर्ष के भयानक परिश्रम के निरर्थक शासन के भविष्य को समझ गया था। वह रूठे हुए राजपूतों को, जो मुगल राज्य के खम्भे थे, मनाने का व्यर्थ प्रयत्न कर रहा था। लोग उससे थक गये थे, वह अपने रक्त-भरे हाथों का स्वप्न देखता था और मूर्खतापूर्ण साम्प्रदायिकता पर पश्चात्ताप करता था।

मारवाड़ के प्रतापी योधा जसवन्तसिंह का देहान्त हो चुका था। और उनके वीर पुत्र अजीतसिंह जालौर में पड़े वृद्ध बादशाह की मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे थे। औरंगजेब का सूबेदार नाजिम कुली जोधपुर का गवर्नर था। मारवाड़ की निरीह प्रजा जसवन्त पाहर को खो कर जैसे-तैसे मुगलों के अत्याचार सहन कर रही थी। मनुष्य जाति का महाशत्रु आलमगीर कब मृत्यु-शैया पर गिरे, महाराज अजीतसिंह और दुर्गादास को कब अभिसंधि प्राप्त हो—जोधपुर का कब उद्धार हो लक्षावधि मारवाड़ी प्रजा इसी प्रतीक्षा मे थी।

(२)

ग्रीष्म समाप्त हो रहा था। सुन्दर प्रभात का सूर्य धीरे-धीरे ऊपर चढ़ रहा था। आकाश में जहाँ-तहाँ बदली दीख पड़ती थी। सीजन गाँव से बाहर मुगल-सेना पड़ाव डाले पड़ी थी। यह सिउना के किले कुमुक लेकर जा रही थी, जिसका रक्षक मुर्तजाबेग मेवाती था और जिसे दो मास से राठौरों ने घेर रखा था।

चार सिपाही झूमते—झामते गाँव में घूम रहे थे। उनके साथ एक खच्चर था। उसके ऊपर बहुत-सी खाद्य सामग्री थी। उनकी घनी काली दाढ़ी, लाल-लाल आँखे, चमकीले जिरह-वख्तर और घमण्ड भरी चाल तथा कामुकता भरी दृष्टि को देखकर स्त्रियाँ और बच्चे भयभीत हो रहे थें। बच्चे गलियों में छिप जाते थे, स्त्रियाँ घरों में गाँव में सन्नाटा था। सब लोग चुपचाप अपने-अपने घरों में छिपे बैठे थे, उन्हें जिस जिन्स की आवश्यकता होती, वह उन्हें गाँव में दीख जाती, उठा कर बिना संकोच खच्चर पर लाद लेते थे। वे अपनी खूँख्वार आँखों से गाँव के आबाल-वृद्ध को घूरते हुए, घनी काली दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए, कमर की तलवार को अनावश्यक रीति पर हिलाते हुए निर्भय घूम रहे थे। इक्का-दुक्का स्त्रियाँ घाट-खेत में यदि वे देख पाते, तो छेड़ देते थे। स्त्रियाँ भाग कर घरों में घुस जाती थीं। वृद्ध पुरुष उन्हें देखते ही गर्दन नीचे कर लेते थे युवकगण चुपचाप दाँत पीसते, और ठंड़ी साँस लेते थे। गाँव में एक भी ऐसा माई का लाल न था, जो उनकी लूटपाट और अत्याचार का विरोध करे।

देखते-देखते सूरज सिर पर चढ़ आया। चारों के शरीर पसीने से भींग कर तर हो गये। एक ने कहा—उफ! गजब की गर्मी है। जल्दी करो, फिर आग बरसने लगेगी। इस कम्बख्त मुल्क में पानी भी तो नहीं बरसता! दूसरे ने कहा—ठीक कहते हो, मगर दही? दही तो अभी मिला ही नहीं। खाँ साहब हमें खा न जायेंगे? इस पर तीनों ने ठहाका मारकर हँस दिया।

सामने एक वृद्ध नंगे बदन अपने घर के द्वार पर चारपाई पर बैठा ५-६ वर्ष के एक बालक को खिला रहा था। बालक अत्यन्त सुन्दर और पुष्ट था। चारों यम सदृश्य व्यक्तियों को अपनी ओर आते देख बच्चा भय से वृद्ध की छाती में चिपक रहा।

उसने भय से कम्पित स्वर में कहा—"बाबा, तुर्क! तुर्क आ रहे हैं!"

"कुछ डर नहीं बेटे। तुम घर में जाओ।" इतना कह कर वृद्ध ने

आगे बढ़ रहा है। उसके पैर में जूता नहीं है, बदन में सिर्फ धोती है, सिर पर पाग है। वह कालपुरुष की भाँति बढ़ रहा था।

चारों युवकों ने तलवारें खींच लीं। राजपूत ने एक-एक पीछे मुड़ कर देखा। क्षण भर रुक कर उसने गाँव वालों से कहा—

"बस, यहाँ से आगे कोई न बढ़े, मेरा [illegible] का इनसे झगड़ा है! उसमें किसी का नाता नहीं है, मैं इनसे निपट लूँगा।"

भीड़ वहीं रुक गयी। ठाकुर कुछ कदम और आगे बढ़ा। चारों सिपाही वहीं खड़े थे। एक के हाथ में दही की हाँडी थी। ठाकुर ने ललकार कर कहा—"अभी दही की हाँडी रख दे।"

सिपाही ने तलवार हवा में घुमाकर कहा—चला है काफिर, तेरी यह औकात! अभी तुझे इस गुस्ताखी का मजा चखाता हूँ। ठाकुर ने सिंह की भाँति उछाल भरी। वह उन चारों के बीच में था। एक ही वार में बकवाद करने वाले का सिर उसने भुट्टे-सा उड़ा दिया—शेष तीनों जम कर युद्ध करने लगे। कुछ क्षण के बाद दूसरा आदमी भी धराशायी हुआ। शेष दो उछल-उछल कर तलवारों की मार करने लगे। राजपूत ने एक पनेठ्या हाथ देकर तीसरे के भी दो टुकड़े कर दिये।

चौथा आदमी भाग खड़ा हुआ। राजपूत ने दही की हाँडी उठायी और गाँव की ओर चला। उसके शरीर में बहुत-से घाव लगे, उनसे खून की धारा बह रही थी। उन सब की उसे परवाह न थी। तलवार उसी भाँति उसकी लौहमुष्टि में बन्द थी—गाँव के लोग सन्नाटे में आकर देख रहे थे। एक शब्द भी किसी के मुँह पर न था। ठाकुर आगे-आगे था, और उसकी देह से टपकती हुई रक्त की बूँदों के दोनों ओर गाँव के आबाल-वृद्ध लौट रहे थे।

(२)

घर के आँगन मे आकर उसने दही की हाँड़ी गोबर से लिपे हुए तुलसी के चतबूरे पर रख दी। फिर उसने हाथ जोड़कर तुलसी के वृक्ष को नमस्कार किया। गाँव के लोगों ने उसे घावों पर पट्टी बाँधने को कहा, परन्तु

उसने एक न सुनी। उसने सब को घर से व हर चले जाने की आज्ञा दी—इसके वाद वह घर के भीतर गया। कोठरी का एक कोना खोदा—कुछ मुहरें और सोने के गहने थे। वह पोटली उसने हाथ में ली। अपने ११ वर्ष के एकमात्र वेटे का हाथ पकड़ा और घर के वाहर आया। एक शब्द भी उसके मुख से नहीं निकला था। गाँव भर उसके द्वार पर एकत्रित था—सब विस्मय और भयपूर्ण दृष्टि से उसे घूर रहे थे। उसने उसी मेघ के समान गरजती आवाज में वृद्ध ब्राह्मण को निकट आने को कहा। पास आने पर उसने पुत्र का हाथ और वह सोने की पोटली ब्राह्मण के हाथ में देकर कहा—"आज से यह पुत्र तुम्हारा हुआ! दादा यह इसके भरण-पोषण का खर्च है।" उसकी वाणी कम्पित हुई; पर उसने गर्व से गर्दन तान ली। रक्त झर-झर उसके शरीर से गिर रहा था। और वह दाहिने हाथ में तलवार कस कर पकड़े हुए था।

वह फिर घर के भीतर गया। घर में पत्नी, माता और विधवा वहिन थीं। तीनों के पास पहुँचकर उसने कहा—तुम तीनों इस चबूतरे पर आ बैठो—और भगवान् का स्मरण करो, आज भगवान् की गोद में जाने का समय आ गया। तीनों अकम्पित पद से वहाँ आकर वैठ गयी। सबसे प्रथम उसने माता के चरण छूकर पदरज आँखों में लगायी। उसकी तलवार उठी और वृद्धा का सिर कटकर तुलसी के पेड़ पर जा गिरा। इसके वाद उसने वहिन के सिर पर हाथ रखा—उसकी आँखों में तरी आयी, पर दूसरे ही क्षण तलवार लड़की की गरदन पर पड़ी और उसका सिर भी वृद्धा के वरावर जा गिरा। इसके वाद पत्नी की ओर उसने देखा—वह पति के चरणों में सिर दिए लोट रही थी। ठाकुर के शरीर का रक्त उसके ऊपर टपक-टपक कर सौभाग्य का सिंचन कर रहा था। ठाकुर ने कहा—उठो, राम की माँ, एक वार गले मिल लें, फिर तो हम स्वर्ग में मिलेंगे।

पत्नी को उठाकर उसने हृदय से लगाया। उसने कहा हम लोगों ने बचपन से बुढ़ापे के द्वार तक दौड़ लगायी। जीवन में हमने सिर्फ एक पुत्र

हँसते हुए उन्होंने तब कहा—लेकिन दरअसल आप आगे नहीं। आप समझते हैं दुनिया की नजरों में जो आप यहाँ मौजूद हैं, इतने से ही मैं यह मान लूँ कि आप पूरे सोलह आने भर पा गये हैं? और जो कहीं आप जरा कुछ थोड़ा आगे हों, तो!

वे तब इतना कहते-कहते मेरे निकट—बिलकुल निकट आ गये। बोले—जब मैं अपने इंजीनियरिंग कालेज में पढ़ता था, तब मैं जैसा था, सच जानिए, आपको देखकर मुझे उसकी याद आ जाती है तो जी मसोसने लगता है। तबियत चाहती है कि अपने को क्या कर डालूँ, जिससे कुछ शान्ति मिले? लेकिन फिर यही सोचकर संतोष कर लेता हूँ कि मनुष्य की तृष्णा का अन्त नहीं है। न आकाश में, न महासागर के अतल में, न गिरि गह्वर में—संसार में कहीं भी, कोई ऐसा स्थान नहीं मिल सकता, जहाँ पहुँचकर मनुष्य कामना से मुक्त हो सके।

बेनी बाबू के मुख पर अनमनीय गम्भीरता की छाप थी, यद्यपि अपने विमल हास से वे उसे छिपाना चाहते थे। मैंने कहा—आप मेरे अध्ययन की चीज हैं यह मुझे आज मालूम हुआ।

एक ओर चलते हुए वे बोले—अभी आपको कुछ भी नहीं मालूम हुआ है।

किन्तु बेनी बाबू की इतनी-सी बात से मेरे मन का कुतूहल अभी शान्त नहीं हो पाया था। इसलिए मैं उनके पीछे-पीछे चल दिया।

घूमते, काम देखते हुए एक मिस्त्री के पास जाकर वे खड़े हो गये। वह आर्च (Arch) बनाने जा रहा था। बोले—देखो जी मिस्त्री, पत्तियाँ और फूल बनाना ही काफी नहीं है। टहनी और उनमें उभड़े हुए काँटे भी दिखाने होते हैं। माना कि नकल, नकल है, असल चीज वह कभी हो नहीं सकती; किन्तु असल चीज की जो असलियत है, गुण के साथ दुर्गुण भी, नकल में यदि उसको स्पष्ट न किया जा सका, तो वह नकल भी नकल नहीं हो सकती। बनाने में तुमको अगर दिक्कत हो, तो मैं नमूना दे सकता हूँ, लेकिन मेरी तबियत की चीज अगर तुम न बना सके, तो

मैं कह नहीं सकता कि आगे चलकर तुम्हें उसका क्या फल भोगना पड़ेगा।

मिस्त्री वृद्ध था। उसके वाल पक गये थे। उसकी आँखों पर पुरानी चाल का चश्मा चढ़ा हुआ था। वड़े गौर से वह वेनी वावू की ओर देखने लगा; लेकिन उसने कुछ कहा नहीं। तव वेनी वावू वहाँ और अधिक ठहर न सके।

अव वे आँगन में एक टव के पास खड़े थे। नल का पानी टव में गिर रहा था। मैं थोड़ा पीछे था। जव उनके निकट पहुँचा, तो वे वोले—आपने इस मिस्त्री की आँखों को देखा? वह कुछ कह नहीं सका था; लेकिन उसकी आँखों ने जो वात कह दी, मैं उसे सहन नहीं कर सका। वह समझता है, मैंने फल भोगने की वात कह कर उसको चोट पहुँचाने, उसका अपमान करने की चेष्टा की है; किन्तु वह नहीं जानता, जान भी नहीं सकता, कि मेरी वात का कोई उत्तर न देकर उसने मुझ पर कैसा भयंकर आघात किया है? एक वह नहीं, मालूम नही कितने आदमी आपको ऐसे मिल सकते हैं, जो मुझे गलत समझते हैं। आज पन्द्रह वर्षों से वल्कि और भी अधिक काल से, मुझे जहाँ-कहीं भी मकान वनवाने का काम पड़ा है, मैंने इस मिस्त्री को अवश्य वुलाया है। मैंने काम के सम्वन्ध में कभी-कभी तो उसे इतना डाँटा है कि वह रो दिया है, तो भी ऐसा अवसर नहीं आया कि उसने मुझे तीखा उत्तर दिया हो। उसका वही पुराना चश्मा है। वैसे ही भीतर तक प्रविष्ट हो जाने वाली आँखें। उसने कभी मजदूरी मुझसे तय नहीं की। और कभी ऐसा अवसर नहीं आया, जव काम समाप्त हो जाने पर, मजदूरी के अतिरिक्त, उसने दस-पन्द्रह रुपये पुरस्कार न प्राप्त किये हों.......किन्तु इन सव वातों को अच्छी तरह समझते हुए भी डाटना तो पड़ता ही है, क्योंकि उससे कलाकार की गुप्त कल्पना को जागरण मिलता है।

अव वेनी वावू घूमते-फिरते वहीं जा पहुँचे, जहाँ स्त्रियाँ छत कूट रहीं थीं। उन्होंने एकाएक जो हैटधारी हम लोगों को देखा तो उनका गाना

आई है, किसी का पति खेत में काम करने गया होगा। किसी के कोई होगा ही नहीं। काम करते-करते उनको अगर उनकी सुधि आ ही जाती है; तो हमारी इस सामाजिक व्यवस्था को सहन नहीं है। और तारीफ यह है कि हम समझ लेते है कि हम बड़े ज्ञानी हैं। हम यही देख कर संतोष कर लेते है कि जो स्त्री यहाँ पर मजदूरी कर रही है, हमको सिर्फ उसी से मतलब है, उसी की मजदूरी हम दे रहे है, किन्तु हम यह सोचने की जरूरत ही नही समझते कि वह स्त्री अपने जगत् को लेकर क्या है। जो बच्चा उसने उत्पन्न किया है, वह भी तो अपने पालन-पोषण का भार अपनी माँ पर रखता है, पर हम लोग वहाँ तक सोचना ही नहीं चाहते। हमारा स्वार्थ सत्य को कितनी निरंकुशता के साथ दबा रहा है।

बेनी बाबू चुप हो गये। एक ओर खुले अम्बर में, विहंगावलियाँ अपने पंखों को फैलाये, नितान्त निर्बन्ध, हँसी खुशी के साथ, उड़ी चली जा रही थी। एक साथ हम दोनों उधर देखने लगे, किन्तु बराबर उधर देखने के बदले मैंने एक बार फिर बेनी बाबू को ही देखा। उनके मस्तिष्क के ऊपर चँदोवा खुल आया था। उसमें नन्हें-नन्हें एक आध बाल ही अवशिष्ट थे। वे अब सांध्य लोक में चमक रहे थे। उनकी खुली आँखें यद्यपि चश्मे के भीतर थीं। तो भी मुझे प्रतीत हुआ, जैसे वे कुछ और भी फैल गई है। इसी क्षण वे बोले—अब यह काम और आगे न करूँगा। लेकिन...

उनका यह वाक्य अधूरा रह गया। जान पड़ा वे कोई निश्चय कर रहे है और रुक जाते हैं। रुक इसलिये नहीं जाते कि रुकना चाहते है। रुक इसलिये जाते है कि रुकना नहीं चाहते।

तभी वे फिर बोले--तुम उस बात को अभी समझ नहीं सकोगे, लेकिन ऐसी बात नहीं है कि उस बात को समझने को तुम्हारी क्षमता कुन्द है। देखता हूँ, तुम विचारशील हो। और तभी मै कहना भी चाहता हूँ कि आदमी तो अपने विश्वासों को लेकर खड़ा है; लेकिन जो आदमी अपने विश्वासों को लेकर भी नही खड़ा होता, वह भी क्या आदमी है? वह आदमी नही है वह पशु है—पशु। लेकिन कैसे कहूँ कि पशु भी अपने विश्वासों के विरुद्ध खड़ा

हो सकने वाला प्राणी है । वह तो.. वह तो, बल्कि प्रवृत्तियों का ही स्वरूप होता है। और वह मनुष्य ? छिः इससे भी अधम क्या कोई स्थिति है ?

मैंने देखा, यह वातावरण तो अब अतिशय गम्भीर हो गया है। और उन दिनों इस तरह की निरी गम्भीरता मुझे जरा कम पसन्द आती थी, बल्कि साथी लोग जब ऐसे व्यक्तियों का मजाक उड़ाते, तो उस दल में मैं भी सम्मिलित हो जाया करता था। बात यह थी कि उस समय एक दूसरा दृष्टिकोण हम लोगों के सामने रहता था। हम सब यही मानते थे कि जीवन तो एक हँसी-खेल की चीज है। सर्वथा अनिश्चित और परम अकल्पित। जीवन के थोड़े-से दिनों का रोना रोने, या सोच-विचार में निपीडित निर्जीव कर डालने में कौन-सी महत्ता है ?

इसीलिए मैंने कह दिया—-इन लोगों के गाने में बीच का यह—हाँ यह स्वर मुझे बड़ा कोमल लगता है ।

निमेषमात्र में, सम्यक् बदल कर—

जाओ नजदीक से जाकर सुन आओ । हट यही रुक जाओ । फिर भी अगर गाना बन्द कर दें तो कहना—काम मे हर्ज नही होना चाहिए; क्योंकि गाने के साथ छत कूटने का काम अधिक अच्छा होता है, ऐसा मैं सुनता आया हूँ—बेनी बाबू ने मुस्कराते हुए कहा ।

मैं चला गया । चुपचाप बहुत धीरे-धीरे, पैर सम्हाल कर। तो भी उनको मालूम हो ही गया । काम की गति में कुछ तीव्रता जरूर जान पड़ी, किन्तु गाना बन्द हो गया।

मैने कहा—तुम लोगो ने गाना क्यो बन्द कर दिया ?

खिलखिला के कुछ मदिर कलहास । कभी इधर—-कभी उधर ।

किसी ने अपनी सखी से कहा, उसे जरा-सा धक्का देकर, गा री पत्तो, चुप क्यों हो गई ?

'तू ही क्यों नही गाती, छोटे भैया के सामने ?'

'हूँ, बड़ी लाजवन्ती बनी है, जैसे दुलहे का मुँह ही न देखा हो ?'

मैने कहना चाहा--लड़ो मत। मै चला जाता हूँ लेकिन मै कुछ कह

न सका। चुपचाप चला आया। चला तो आया, किन्तु उस खिलखिल और अपने सामने गाने से लजाने वाली उस पत्ती को मैंने फिर देखने की चेष्टा नहीं की।

कैसे उल्लास के साथ आया था किन्तु कैसा भीषण द्वन्द्व देकर चल दिया। वेनी वावू ने बड़े प्यार से पूछा--कह जाओ।

मैंने कहा--क्या कह जाऊँ? वही वात हुई। उन लोगों ने गाना वन्द कर दिया।

'फिर तुमने वह वात नहीं कही?'

'उसे मैं कह नहीं सका।'

'तो यह कहो कि तुम खुद लजा गये!'

मैं चुप रहा! जिसने कभी चोरी नहीं की, वह जो यह भी नहीं जानता कि चोरी कैसे की जाती हैं, वह चीज क्या है, कि कभी उसके दलदल में पड़ जायगा, तो उससे सफाई के साथ निकल ही कैसे सकेगा? वह तो निश्चयपूर्वक फँस जायगा। वह गति मेरी हुई। क्या मैं जानता था कि वेनी वावू ऐसी जगह ले जायँगे, जहाँ पहुँच कर फिर मुक्ति का कोई मार्ग ही दृष्टिगत न होगा।

वेनी वावू वोले--अच्छा एक काम कर आओ। रामलखन से कहना, अगर आज यह काम किसी तरह पूरा होता न दीख पड़े, तो कल ही पूरा कर डालना ठीक होगा। वेनी वावू से मैंने कह दिया है कि मजदूरों से उतना ही काम लिया जाय, जितना वे कर सकें।

मैं उनकी ओर देखता रह गया। मेरे मन में आया--यह आदमी है कि देवता।

मुझे अवाक् देखकर उन्होंने पूछा--सोचते क्या हो?

मैंने कहा--कुछ नहीं। इतने दिन से आपका परिचय प्राप्त है; किन्तु कभी ऐसा अवसर नहीं आया कि आपको इतने निकट से देख पाता।

वे वोले---यह सव कोई चीज नहीं है छोटे भैया! न्याय और सत्य से हम कितने दूर रहते हैं, शायद हम खुद नहीं जानते. . .अच्छा जाओ जो काम तुम्हें दिया गया है, उसको पूरा तो कर आओ।

वे बीमार थे, और उनकी बीमारी बढ़ती जाती थी। मैं देख रहा था, था, शायद बेनी बाबू तैयारी कर रहे हैं। लेकिन एक दिन मैंने उन्हें दूसरे रूप में देखा। मैंने देखा कि मृत्यु को उन्होंने मसल डाला है, पीस डाला है! वह छटपटा रही है! वह भाग जाना चाहती है!

वे एक पलंग पर लेटे हुए थे, बहुत धीरे-धीरे बातें कर रहे थे। उनके पास एक नौजवान बैठा हुआ था। वह मौन था और बेनी बाबू उससे कुछ पूछ रहे थे। उसी क्षण मैं पहुँच गया। वे उठने को हुए, तो नौकर ने उन्हें उठा दिया और उनके पीछे तकिये लगा दिये। पहले आँखों पर चश्मा नहीं था; अब उन्होंने चश्मा चढ़ा लिया।

संकेत पाकर मैं उनके पास ही कुरसी डालकर बैठ गया था।

बोले—सुनते हो मुल्लू, मैं तुमको रोने नहीं दूँगा। रोने दूँ, तो मैं अपने को खो दूँगा; लेकिन मैं इतना सस्ता नहीं हूँ। मैं मरना नहीं चाहता, इसलिए मैं तुमको प्रसन्न देखना चाहता हूँ। बतलाओ, तुम किस तरह से प्रसन्न हो सकते हो? मैं और साफ कर दूँ? मैं तुमको कुछ देना चाहता हूँ। बोलो, तुम कितने रुपये पाकर खुश हो सकते हो? लेकिन तुम यह सोचने की भूल न करना कि ये रुपये तुम्हारे स्त्री की कीमत हैं। एक स्त्री—एक नवयुवती, एक सुन्दरी—को, क्या रुपयों से तोला जा सकता है? छिः वह तो एक मूर्खता की बात है—जंगलीपन की। लेकिन मैंने अभी तुमको बतलाया न, मैं तुमको खुश करना चाहता हूँ।

—ओह एक नवयुवती—'एक सुन्दरी'!

—तो क्या पत्नी सुन्दर थी?

—तो उसका कंठ ही कोमल न था, वरन्....

बेनी बाबू बोले—मैं जानता हूँ तुम कुछ कहोगे नहीं। अच्छा, तो मैं ही कह देता हूँ—उसके बच्चे की परिवरिश के लिए, दस रुपये हर महीने मुझसे बराबर ले जाया करना! समझे! यह.....लो दस रुपये! आज पहली तारीख है। हर महीने की पहली तारीख को ले जाया करना।

जेब से नोट निकालकर उन्होंने मुल्लू के आगे फेंक दिया। मुल्लु तब

कितना खुश था इसको मैंने जाना, किन्तु वेनी वावू ने जितना कुछ जाना उसको मैं न जान सका।

मुल्लू जब छलकते आनन्दाश्रुओं के साथ चल दिया, तो वेनी वावू बोले—मेरा ख्याल है, अब यह खुश रहेगा। क्यों? तुम क्या सोचते हो?

मैं चकित था, प्रतिहत था, अभिभूत भी था, तो भी मैंने कह दिया -- आपने यह क्या किया?

'ओह तुम मुझसे पूछते हो छोटे भैया!--यह क्या किया! यह मैंने अपने को भुलाने के लिए किया है, क्योंकि मनुष्य अपने को भुलावे में रखने का अभ्यासी है। मैंने देखा-मैं एक भूल कर रहा हूँ--मैं मृत्यु को वुला रहा हूँ। तब मैंने सोचा—ऐसी भूल नहीं करूँगा, जिसमें अपने आप को मैं भूल सकूँ। जीवन में एक ऐसा क्षण भी आता है, जब हमको अपने आपको भुलाना पड़ता है। यह मेरा ऐसा ही क्षण है, लेकिन यह मेरी भूल नहीं है। यह तो मेरा नवजीवन है--जागरण!'

० ० ०

यह कथा तो यहीं समाप्त हो गयी है, किन्तु इस कथा के प्राण में जो अन्तर्कथा है, उसी की वात कहता हूँ। उपर्युक्त घटना के पीछे कुछ वत्सर और जुड़ गये हैं। यह वँगला अब मुझे रहने के लिए दिया है। अब मैं अकेला ही इसमें रहता हूँ। कई राहस्य पुस्तकों के महत् ज्ञान से आवृत है—लोग कहते हैं-प्रोफेसर हूँ। जीवन और जगत् का तत्वदर्शी। लेकिन मैं अपनी समस्या किससे कहूँ?—अपना अन्तर खोलकर किसको दिखलाऊँ? बच्चे सुनें तो हँसें—वीवी सुने, तो कहे पागल हो गये हो।

कभी-कभी रात के घोर सन्नाटे में स्वप्नादिष्ट-सा मैं कुछ अस्पष्ट ध्वनियाँ सुनने लगता हूँ। कोई खिल-खिल हँस रही है। कोई धक्का देकर कह रही है—गा री पत्ती! और चूड़ियाँ खनक उठती हैं; छत कूटने लगती हैं और एक कोमल—अत्यन्त कोमल गायन स्वर फूट पड़ता है—निंदिया लागी।

और उसके हाथों में जो छाले पड़ गये हैं, वे वहाँ से उठ कर मेरे हृदय से आकर चिपक गये हैं। ●

अपना-अपना भाग्य

जैनेन्द्रकुमार

बहुत कुछ निरुद्देश्य घूम चुकने पर हम सड़क के किनारे की एक बेञ्च पर बैठ गये।

नैनीताल की संध्या धीरे-धीरे उतर रही थी। रुई के रेशे से, भाप से बादल हमारे सिरों को छू-छूकर बेरोक घूम रहे थे। हल्के प्रकाश और अँधियारी से रंगकर कभी वे नीले दीखते, कभी सफेद और फिर देर में अरुण पड़ जाते थे, वे जैसे हमारे साथ खेलना चाह रहे थे।

पीछे हमारा पोलोवाला मैदान फैला था। सामने अंगरेजों का एक प्रमोद-गृह था, जहाँ सुहावना रसीला बाजा बज रहा था और पार्श्व में था वहीं सुरम्य अनुपम नैनीताल।

ताल मे किश्तियाँ अपने सफेद पाल उड़ाती हुई एक-दो अंगरेजी यात्रियों को लेकर, इधर-से-उधर खेल रही थीं। कहीं कुछ अंगरेज एक-एक देवी सामने प्रतिष्ठापित कर, अपनी सुई-सी शक्ल की डोंगियों को, मानों शर्त बांध कर सरपट दौड़ा रहे थे। कहीं किनारे पर कुछ साहब अपनी बंसी डाले, सधैर्य, एकाग्र, एकस्थ, एकनिष्ठ मछली-चिन्तन कर रहे थे।

पीछे पोलो-लान मे बच्चे किलकारियाँ भरते हुए हाकी खेल रहे थे। शोर, मार-पीट, गाली-गलौज भी जैसे खेल का ही अंश था। इन तमाम खेल को उतने क्षणों का उद्देश्य बना, वे बालक अपना सारा मन, सारी देह, समग्र बल और समूची विद्या लगा कर मानो खतम कर देना चाहते थे। उन्हें आगे की चिन्ता न थी, बीते

ा ख्याल न था। वे शुद्ध तत्काल के प्राणी थे। वे शब्द की सम्पूर्ण च्चाई के साथ जीवित थे।

सड़क पर से नर-नारियों का अविरल प्रवाह आ रहा था और जा हा था। उसका न ओर था न छोर। यह प्रवाह कहाँ जा रहा था और हाँ से आ रहा था, कौन बता सकता है? उस उम्र के, सब तरह के लोग उसमें थे! मानो मनुष्यता के नमूनों का बाजार सजकर सामने से इठलाता निकला चला जा रहा हो।

अधिकार-गर्व में तने अंगरेज उसमें थे। और चिथड़ों से सजे घोड़ों की ाग थामे, वे पहाड़ी उसमें थे, जिन्होंने अपनी प्रतिष्ठा और सम्मान को कुचल कर शून्य बना दिया है और जो बड़ी तत्परता से दुम हिलाना सीख ाये।

भागते, खेलते, हँसते, शरारत करते, लाल-लाल अंगरेज-बच्चे थे और ीली-पीली आँखें फाड़े, पिता की उँगली पकड़ कर चलते हुए अपने हिन्दु-तानी नौनिहाल भी थे।

अंगरेज पिता थे, जो अपने बच्चों के साथ भाग रहे थे, हँस रहे थे और ेल रहे थे। उधर भारतीय पितृदेव भी थे, जो बुजुर्गी को अपने चारों तरफ लपेटे-धन-सम्पन्नता के लक्षणों का प्रदर्शन करते हुए चल रहे थे।

अंगरेज-रमणियाँ थी, जो धीरे नहीं चलती थीं, तेज चलती थीं। उन्हें न चलने में थकावट आती थी, न हँसने में मौज आती थी। कसरत के नाम पर घोड़े पर भी बैठ सकती थीं, और घोड़े के साथ-ही साथ, जरा जी होते ही, किसी-किसी हिन्दुस्तानी पर कोड़े भी फटकार सकती थी। वही दो-दो, तीन-तीन, चार-चार की टोलियों में निःशंक निरापद इस प्रवाह में मानों अपने स्थान को जानती हुई, सड़क पर से चलती जा रही थीं।

उधर हमारी भारत की कुल-लक्ष्मी; सड़क के बिलकुल किनारे, दामन बचाती और सँभालती हुई साड़ी की कई तहों में सिमट-सिमट कर, लोक-लाज, स्त्रीत्व और भारतीय गरिमा के आदर्श को अपने परिवेष्टनों में छिपा-कर सहमी-सहमी धरती में आँख गाड़े कदम-कदम बढ़ा रही थी।

इसके साथ ही भारतीयता का एक और नमूना था। अपने कालेपन को खुरच-खुरच कर बहा देने की इच्छा करने वाले अंगरेजी-दाँ पुरुषोत्तम भी थे, जो नेटियों को देख कर मुँह फेर लेते थे और अंगरेजों को देख कर आँखें बिछा देते थे और दुम हिलाने लगते थे। वैसे वह अकड़कर चलते थे—मानों भारत-भूमि को इसी अकड़ के साथ कुचल-कुचल कर चलने का उन्हे अधिकार मिला है ।

(२)

घण्टे के घण्टे सरक गये। अन्धकार गाढ़ा हो गया। बादल सफेद होकर जम गये। मनुष्यों का वह तांता एक-एक कर क्षीण हो गया। अब इक्के-दुक्के आदमी सड़क पर छतरी लगाकर निकल रहे थे। हम वहीं-के-वहीं बैठे थे। सर्दी-सी मालूम हुई। हमारे ओवरकोट भीग गये थे।

पीछे फिर कर देखा। वह लाल बर्फ की चादर की तरह बिल्कुल स्तब्ध और मुन्न पडा था।

सब ओर सन्नाटा था। तल्लीताल की बिजली की रोशनियां दीप-मालिका-सी जगमगा रही थी। वह जगमगाहट दो मील तक फैले हुए प्रकृति के जल-दर्पण पर प्रतिबिम्बित हो रही थी और दर्पण का काँपता हुआ, लहरें लेता हुआ, वह जल, प्रतिबिम्बयो को सौ गुना, हजार गुना करके उनके प्रकाश को मानो एक ओर पुंजीभूत करके व्याप्त कर रहा था। पहाड़ों के सिरो पर की रोशनियां तारों-सी जान पड़ती थी।

हमारे देखते-देखते एक घने पर्दे ने आकर सबको ढंक दिया। रोशनियाँ मानो मर गईं। जगमगाहट लुप्त हो गई। वह काले-काले भूत-से पहाड़ भी इन सफेद पर्दों के पीछे छिप गये। पास की वस्तु भी न दीखने लगी। मानो यह घनीभूत प्रलय थी। सब कुछ इसी घनी गहरी सफेदी से दब गया। एक शुभ्र महासागर ने फैल कर संसृति के सारे अस्तित्व को नीचे डुबो दिया ऊपर चारों तरफ वह निर्भेद्य सफेद शून्यता ही फैली हुई थी।

ऐसा घना कुहरा तुमने कभी नही देखा था। वह टप-टप टपक रहा था।

मार्ग अब बिलकुल निर्जन-चुप था। वह प्रवाह न जाने किन घोसलों में जा छिपा था।

उस वृहदाकार शुभ्र शून्य में, कहाँ से, ग्यारह बार टन्-टन् हो उठा। जैसे कहीं दूर कब्र में से आवाज आ रही हो।

हम अपने-अपने होटलों के लिए चल दिए।

(३)

रास्ते में दो मित्रों के होटल मिले दोनों वकील-मित्र छुट्टी लेकर चले गये। हम दोनों आगे बढ़े। हमारा होटल आगे था।

ताल के किनारे-किनारे हम चले जा रहे थे। हमारे ओवरकोट तर हो गये थे। बारिश नहीं मालूम होती थी; पर वहां ऊपर नीचे हवा के कण-कण में बारिश थी। सर्दी इतनी थी कि सोचा, कोट पर एक कम्बल और होता तो अच्छा होता।

रास्ते में ताल के बिल्कुल किनारे बेंच पड़ी थी। मैं जी में बेचैन हो रहा था। झटपट होटल पहुँचकर इन भीगे कपड़ों से छुट्टी पा गरम बिस्तर मे छिपकर रहना चाहता था; पर साथ के मित्र की सनक कब उठेगी, कब थमेगी—इसका पता न था। और वह कैसी क्या होगी—इसका भी कुछ अन्दाज न था। उन्होने कहा—आओ, जरा यहाँ बैठें।

हम उस चूते कुहरे में रात के ठीक एक बजे तालाब के किनारे उस भीगी बर्फ-सी ठंडी हो रही लोहे की बेंच पर बैठ गये।

५, १०, १५ मिनट हो गये। मित्र के उठने का इरादा न मालूम हुआ। मैंने खिसिया कर कहा—

"चलिए भी।"

"अरे जरा बैठो भी।"

हाथ पकड़ कर जरा बैठने के लिए जब इस ओर से बैठा लिया [illegible] तो चारा न रहा—ला[illegible] [illegible]ठे रहना पड़ा। सनक से छुटकारा [illegible] न था, और यह [illegible] था, बहुत था।

रोती थी। सो भाग आया। एक साथी और था उसी गांव का। मुझसे बड़ा था। दोनों साथ यहाँ आये। वह अब नहीं है।"

"कहां गया?"

"मर गया।"

"मर गया?"

"हाँ, साहब ने मारा, मर गया।"

"अच्छा; हमारे साथ चल।"

वह साथ चल दिया। लौटकर हम वकील-दोस्तों के होटल में पहुंचे।

"वकील साहब!"

वकील लोग होटल के ऊपर के कमरे से उतर कर आये। काश्मीरी दोशाला लपेटे थे, मोजे चढ़े पैरों मे चप्पलें थी। स्वर में हल्की-सी झुंझलाहट थी, कुछ लापरवाही थी।

"आ–हा फिर आप! -कहिए?"

"आपको नौकर की जरूरत थी न?-देखिए, यह लड़का है।"

"कहाँ से ले आये!—इसे आप जानते हैं?"

"जानता हूँ—यह बेईमान नही हो सकता।"

"अजी ये पहाड़ी बड़े शैतान होते हैं। बच्चे-बच्चे में गुन छिपे रहते हैं। आप भी क्या अजीब हैं, उठा लाये कहीं से—लो, जी यह नौकर लो।"

"मानिए तो, यह लड़का अच्छा निकलेगा।"

"आप भी···जी, बस खूब है। ऐरे गैरे को नौकर बना लिया जाय और अगले दिन वह न जाने क्या-क्या लेकर चम्पत हो जाय।"

"आप मानते ही नही, मैं क्या करूँ?"

"मानें क्या खाक!—आप भी···जी अच्छा मजाक करते है।··· अच्छा, अब हम सोने जाते है।"

और वह चार रुपये रोज के किरायेवाले कमरे में सजी मसहरी पर सोने झटपट चले गये।

(४)

वकील साहब के चले जाने पर होटल के बाहर आकर मित्र ने अपनी जेब में हाथ डालकर कुछ टटोला; पर झट कुछ निराश भाव से हाथ बाहर कर मेरी ओर देखने लगे।

"क्या है ?"

"इसे खाने के लिए कुछ देना चाहता था", अँगरेजी में मित्र ने कहा—"मगर, दस-दस के नोट हैं।"

"नोट ही शायद मेरे पास हैं, देखूँ ?"

सचमुच मेरे पाकिट में भी नोट ही थे। हम फिर अँगरेजी में बोलने लगे। लड़के के दाँत बीच-बीच में कटकटा उठते थे। कड़ाके की सर्दी थी।

मित्र ने पूछा--"तब ?"

मैंने कहा—"दस का नोट ही दे दो।" सकपकाकर मित्र मेरा मुँह देखने लगा—"अरे यार ! बजट बिगड़ जायगा। हृदय में जितनी दया है, पास में उतने पैसे तो हैं ही नहीं।"

"तो जाने दो, यह दया ही इस जमाने में बहुत है" --मैंने कहा।

मित्र चुप रहे। जैसे कुछ सोचते रहे। फिर लड़के से बोले--"अब आज तो कुछ नहीं हो सकता। कल मिलना। वह 'होटल डि पब' जानता है। वहीं कल १० बजे मिलेगा ?"

"हाँ · · · · · कुछ काम देंगे, हजूर।"

"हाँ-हाँ ढूंढ़ दूंगा।"

"तो जाऊँ ?"

"हाँ", ठंडी साँस खींचकर मित्र ने कहा--"कहाँ सोयेगा ?"

"यहीं कहीं; बेंच पर, पेड़ के नीचे किसी दुकान की भट्ठी मे"

बालक फिर उसी प्रेत-गति से एक ओर बढा। और कुहरे में मिल गया। हम भी होटल की ओर बढे। हवा तीखी थी—हमारे कोटों को पार कर बदन में तीर-सी लगती थी।

सिकुड़ते हुए मित्र ने कहा—"भयानक शीत है। उसके पास! कम—बहुत कम कपड़े! ···"

"यह संसार है यार !"—मैंने स्वार्थ की फिलासफी सुनाई—"चलो पहले बिस्तर में गर्म हो लो, फिर किसी और की चिन्ता करना।"

उदास होकर मित्र ने कहा—"स्वार्थ !—जो कहो, लाचारी कहो, निठुराई कहो, या बेहयाई !"

दूसरे दिन नैनीताल—स्वर्ग के किसी काले गुलाम पशु के दुलारे का बेटा—वह बालक निश्चित समय पर हमारे 'होटल डि पव' में नहीं आया। हम अपनी नैनीताल की सैर खुशी-खुशी खत्म कर चलने को हुए। उस लड़के की आस लगाये बैठे रहने की जरूरत हमने न समझी।

मोटर में सवार होते ही थे कि यह समाचार मिला कि पिछली रात, एक पहाड़ी बालक सड़क के किनारे पेड़ के नीचे, ठिठुरकर मर गया।

मरने के लिए उसे वही जगह, वही दस बरस की उम्र और वही काले चिथड़ों की कमीज मिली। आदमियों की दुनिया ने बस यही उपकार उसके पास छोड़ा था।

पर बताने वालों ने बताया कि गरीब के मुँह पर, छाती, मुट्ठी और पैरों पर, बरफ की हल्की-सी चादर चिपक गई थी। मानो दुनिया की बेहयाई ढकने के लिए प्रकृति ने शव के लिए सफेद और ठण्डे कफन का प्रबन्ध कर दिया था !

सब सुना और सोचा—अपना-अपना भाग्य ! ●

दुःख का अधिकार

यशपाल

पोशाक मनुष्य को विभिन्न श्रेणियों में बाँटने वाली सीमा है। पोशाक ही समाज में मनुष्य का अधिकार और उसका दर्जा निश्चित करती है। वह हमारे लिए अनेक बंद दरवाजे खोल देती है; परन्तु कभी ऐसी भी परिस्थिति आ जाती है, जब हम नीचे झुक कर मनुष्य की निचली श्रेणियों की अनुभूति को समझना चाहते हैं; उस समय यह पोशाक भी बन्धन और पैर की बेड़ी बन जाती है। जैसे वायु की लहरें कटी हुई पतंग को सहसा भूमि पर नहीं गिर जाने देतीं, उसी प्रकार हमारी पोशाक, खास परिस्थितियों में हमें झुकने के रोके नहीं रहती है।

बाजार में फुटपाथ पर कुछ खरबूजे डलिए में और कुछ जमीन पर फैलाये एक अधेड़ उमर की औरत बैठी रो रही थी। खरबूजे बिक्री के लिए थे; परन्तु उन्हें खरीदने के लिए कोई कैसे आगे बढ़ता, जब उन्हें बेचने वाली कपड़े से मुँह छिपाये सिर को घुटनों पर रक्खे फफक-फफक कर रो रही थी।

आस-पास की दूकानों के पटरों पर बैठे—या नीचे खड़े आदमी घृणा से उसी के सम्बन्ध में जिकर कर रहे थे। उसका रोना देख मन में एक व्यथा-सी उठी; पर उसके रोने का कारण जानने का उपाय ?

यह पोशाक भी व्यवधान बन कर खड़ी हो गयी। घृणा से एक तरफ थूकते हुए एक आदमी ने कहा—"क्या जमाना है जवान लड़के को मरे एक दिन भी नहीं बीता और यह बेहया दूकान लगा के बैठी है।" अपनी दाढी खुजलाते हुए साहब कह रहे थे—'अरे जैसी नियत होती है, वैसी ही अल्ला बरकत भी देता है।"

एक तरफ कुछ दूर खड़े एक आदमी ने दियासलाई से कान खुजलाते हुए कहा—"अरे इन लोगों का क्या ? यह कमीने लोग टुकड़ों पर जान देते है। इनके लिए बेटा-बेटी, खसम-लुगाई, धर्म ईमान, सब रोटी का टुकडा है !"

परचून की दूकान पर बैठे लालाजी ने कहा—"अरे भाई, उनके लिए मरे-जिये का कोई मतलब न हो; पर दूसरे के धर्म का तो ख्याल करना चाहिए। जवान बेटे के मरने का तेरह दिन का सूतक है। और यह यहाँ सड़क पर बाजार में आ खरबूजे बेचने बैठी है। हजार आदमी आते है, जाते है। कोई क्या जानता है कि इसके घर मे सूतक है। कोई इसके खरबूजे खा ले तो उसका ईमान-धर्म क्या रहेगा। क्या अंधेर है।"

० ० ०

पास-पड़ोस में पूछने पर जान पड़ा—उसका तेइस बरस का जवान लड़का था। उसकी एक बहू है और एक पोती-पोता। शहर के पास डेढ बीघा भर जमीन में कछियारी करके वह अपना निर्वाह करता था। खरबूजों की डलिया बाजार में पहुँचाकर कभी लड़का सौदे के पास बैठता, कभी माँ के। परसो के रोज सुबह मुँह अंधेरे लड़का बेलों में से पके खरबूजे चुन रहा था। गीली मेड़ की तरावट मे विश्राम करते हुए साँप पर पैर पड़ने से साँप ने लड़के को काट खाया।

माँ बावली होकर ओझा बुला लाई। झाड़ना-फूंकना हुआ। नागदेव की पूजा हुई। पूजामें दान-दक्षिणा चाहिए; घर में जो कुछ आटा और अनाज था, दान दक्षिणा में उठ गया। माँ बहू और पोते "भगवाना"से लिपट-लिपट कर रोये; पर भगवाना जो एक दफे चुप हुआ, तो फिर न बोला। सर्प के विष से उसका सब बदन काला पड़ गया था।

जिंदा आदमी नंगा भी रह सकता है; परन्तु मुर्दे को नंगा कैसे विदा किया जाये। उसके लिए तो बजाज की दूकान से नया कपडा लाना ही होगा। चाहे उसके लिए माँ के छन्नी-ककना ही क्यों न गिरवी पड़े।

० ० ०

भगवाना चला गया और घर में जो कुछ चूनी-भूसी थी, सो उसे विदा करने में चली गयी। बाप नहीं रहा तो क्या? लड़के सुवह उठते ही भूख से बिलबिलाने लगे। दादी ने उन्हें खाने को खरबूजे दिये, लेकिन वहू को क्या दे? उसका वदन बुखार से तवे की तरह तप रहा था, आज वेटे के बिना उसे दुअन्नी-चवन्नी कौन उधार देगा।

रोते-रोते आँखें पोंछते बुढ़िया भगवाना के बटोरे हुए खरबूजे डलिया में समेट कर बाजार को चली। और चारा ही क्या है?

० ० ०

वह आई थी खरबूजे वेचने का साहस कर; परन्तु चादर से सिर लपेट सिर को घुटनों पर टिकाये, फफक-फफक कर रो रही थी।

"कल जिसका वेटा चल वसा, आज वह वाजार में सौदा वेचने चली है, हाय रे पत्थर का दिल?" उसके दुःख का अन्दाजा लगाने के लिये पिछले साल अपने पड़ोस में पुत्र की मृत्यु से दुखी माता की वात सोचने लगा··· जो पुत्र की मृत्यु के वाद पन्द्रह दिन तक पलग से उठ नही सकी थी। मूर्च्छा न आने की अवस्था में आँखों से आँसू न रुकते थे। दो-दो डाक्टर सिरहाने वैठते थे। हरदम सिर पर वरफ रक्खी जाती।···शहर भर के लोगों के मन उस पुत्र शोक से द्रवित हो उठे थे।

जव मन को सूझ का रास्ता नही मिलता, तो वेचैनी से कदम तेज हो जाते हैं। उसी हालत में नाक ऊपर उठाये, राह-चलतों से ठोकर खाता, मैं चला जा रहा था, यह सोचता हुआ-"शोक करने के लिए, गम मनाने के लिये भी सहूलियत चाहिए और दुःखी होने का भी एक अधिकार होता है···।"

●

शान्ति हँसी थी

अज्ञेय

"जानकीदास मुजरिम, तुम पर जुर्म लगाया जाता है कि तुमने तारीख १४ दिसम्बर को शाम के आठ बजे हालीवुड पार्क के दरवाजे पर दगा किया, और कि तुम्हारी रोजी का कोई जरिया नहीं है। बोलो, तुम्हें जवाब में कुछ कहना है ?"

जवाब के बदले जानकीदास को टुकर-टुकर अपनी ओर देखता पाकर न जाने क्यों मजिस्ट्रेट—हाँ, मजिस्ट्रेट—पसीज उठे। उन्होंने कहा—"जो कुछ तुम्हें जवाब में कहना हो, सोच लो, मैं तुम्हें पाँच मिनट की मोहलत देता हूँ।"

० ० ०

पाँच मिनट।

जानकीदास के वज्राहत मन को, मानो कोड़े की चोट-सा, मानो बिच्छू के डंक-सा यह एक फिकरा काटने लगा, बताने की वह फिजूल कोशिश करने लगा—'पाँच मिनट !'

पाँच मिनट—

जैसे नदी किनारे पर पड़ा हुआ कछुआ पास कहीं खटका सुन कर तनिक-सा हिल जाता है और फिर वैसा ही रह जाता है लोंदा का लोंदा, वैसे ही जानकीदास के मन ने कहा—"शान्ति हँसी थी" और रह गया।

पाँच मिनट—

कुछ कहना है अवश्य, सफाई देनी है अवश्य . . .

पाँच मिनट . . .

शान्ति हँसी . . .

कब ? कहाँ क्यों हँसी थी ? और कौन है वह, क्यों है, मुझे क्या है उससे ?

पाँच मिनट · · ·

उसे धीरे-धीरे याद सा आने लगा; किन्तु याद की तरह नहीं। बुखार के बुरे सपनों की तरह।

० ० ०

शान्ति ने रोटी उसके हाथ में थमाकर उसी में भाजी डालते-डालते कहा था—"इस वक्त तो खा लेते हैं, उस जून मेरी एकादशी है।"

उसने पूछा था—"क्यों ?"

"क्यों क्या ! तुम्हें खिला दूँगी"—और हँस दी थी।

उस जून के लिए रोटी नहीं है, यह कहने के लिए हँस दी थी।

दोपहर में, सड़कों पर फिरता हुआ जानकीदास सोच रहा था। इतनी बड़ी दुनिया में, इतने कामों से भरी हुई दुनिया में, क्या मेरे लिए कोई भी काम नहीं है ? वह पढ़ा-लिखा था, अपने माँ-बाप से अधिक पढ़ा-लिखा था; पर उन्हें मरते समय तक कभी कष्ट नहीं हुआ था। चाहे धनी वे नहीं हुए, तब वह क्यों भूखा मरेगा ? और शान्ति, उसकी बहन, भी हिन्दी पढ़ी है और काम कर सकती है।

जहाँ-जहाँ से उसे आशा थी, वहाँ सब वह देख चुका था बल्कि जहाँ आशा नहीं थी, वहाँ भी देख-देखकर वह लौट चुका था।

अब उसे कहीं और जाने को नहीं था—सिवाय घर के और वहाँ उस जून के लिए रोटी नहीं थी और यह बताने को शान्ति हँसी थी—हँसी थी · · ·

तब तक, भले ही उसके मन में सम्पन्नता का, पढ़ाई का, दरजे का, इज्जत-आबरू का, बुर्जुआ मनोवृत्ति का, कुछ अभिमान, कुछ निशान बाकी रहा हो, अब नहीं रहा। उसके लिए कुछ नहीं रहा था। केवल एक बात रही थी कि उस जून के लिए रोटी नहीं है और शान्ति हँसी थी।

राह–चलते उसने देखा, बायीं ओर एक बड़ा–सा आँगन है, एक भव्य मकान का, जिसमें तीन–चार सुन्दर बच्चे खेल रहे हैं। एक ओर एक लड़की बिना आग के एक छोटे–से चूल्हे पर, लकड़ी की हड़िया चढ़ाये रसोई पका रही है और खेलने वाले लड़के से कह रही है–"आओ भइया, रोटी तैयार है।"

वह एकाएक आँगन के भीतर हो लिया। लड़के सहम कर खड़े हो गये—शायद उसका मुँह देखकर।

उसने एक लड़के से कहा–"बेटा जाकर अपने पिता से पूछ तो, यहाँ कोई पढ़ाई का काम है?"· · ·

लड़के ने कहा—"हम नही जाते, आप ही पूछ लो।"

जानकीदास ने दूसरे से कहा—"तुम पूछ दोगे? बड़े अच्छे हो तुम· · ·।"

उस लड़के ने एक बार अपने साथी की ओर देखा, पूछ रहा हो—"मैं भी ना कह दूँ?" लेकिन फिर भीतर चला गया और आकर बोला—पिताजी कहते है, कोई काम नही है।"

जानकीदास ने फिर कहा—"एक बार और पूछ आओ, कोई जिल्द-साजी का काम है? या बढ़ई का? या और कोई?"

लड़के ने कहा—"अबकी तो पूछ लेता हूँ फिर नही जाने का।" आकर बोला—"पिताजी कहते हैं—'यहाँ से चले जाओ। कोई काम नहीं है। फिजूल सिर मत खाओ'।"

जानकीदास बाहर निकल आया।

० ० ०

कोई पढ़ाने का काम है? किसी क्लर्क की जरूरत है? जिल्दसाजी की? बढई की? रसोइया की? भिश्ती की? टहलुए की? मोची—मेहतर की?

कोई जरूरत नही है। सब के अपने–अपने काम है, केवल जानकीदास

की कोई जरूरत नहीं है और उस जून खाने को नहीं, और शान्ति हँसी थी।

० ० ०

शाम को हालीवुड पार्क के दरवाजे के पास जो भीड़ खड़ी थी, उन्हीं में यह भी था। दुनिया है, घर है, शान्ति है, रोटी है, यह सब भूल गया था। भूल नहीं गया था, याद रखने की क्षमता, मन को इकट्ठा अपने वश में रखने की सामर्थ्य, वह खो बैठा था, न उसको कोई सोच था, न उसकी कोई इच्छा थी। वहाँ भीड़ थी, लोग खड़े थे—इसीलिए वह भी था।

भीतर असंख्य बिजली की बत्तियाँ जगमगा रही थीं। बड़े-बड़े झूले, रंगी-विरंगी रोशनी में, किसी स्वप्न-आकाश के तारों से लग रहे थे। कही एक बहुत ऊँचा खम्भा था, जिसकी कुल लम्बाई नीली और लाल लेम्पों से सजी हुई थी, ऊपर उसके एक तख्ता बँधा हुआ था।

उसी के बारे में बातें हो रही थीं। और जानकीदास मंत्र-मुग्ध-सा सुन रहा था।

"वह जो है न खंभा, उसी पर से आदमी कूदता है। नीचे एक जलता हुआ तालाब होता है, उसी में।"

"उससे पहले दूसरा खेल भी होता है, जिसमे कुत्ता कूदता है।"

"नहीं वह बाद में है। पहले साइकिल परसे कूदने वाला है। वह वहाँ से नही दीखता।"

"वह कितने बजे होगा?"

"अभी थोड़ी देर में होने वाला है—आठ बजे होता है।"

"यह आवाज क्या है?"

"अरे जो वह गुम्बद में मोटर साइकिल चलाता है, उसी की है।"

जानकीदास का अपना कुछ नही था। इच्छा-शक्ति भी नही। जो दूसरे सुनते थे, वही उसे दीख जाता था।

"वह देखो।"

झूले चलने लगे थे, चरखियां घूमने लगी थीं, उन पर बैठे हुए लोग

रामलीला

राधाकृष्ण

पेशा में कोई पेशा हुआ भी, तो रामलीला का दल रखने का पेशा हुआ। दूकानदारी का पेशा होता, जमींदारी होती, महाजनी होती, कोई भी कैसा भी पेशा होता, तो एक बात थी। मगर रामलीला का दल रखने का पेशा, सो भी यह खानदानी पेशा है। सात पुश्तों से रामलीला का दल चला, आता है। और रामरतन जरा आधुनिक बुद्धि का आदमी है, सो अपने इस पेशे को पसन्द नहीं करता। मगर खानदानी चीज है। रामलीला वह छोड़ नहीं सकता, अपना दल तोड़ नहीं सकता।

मगर ये जो ऐरा-गैरा नत्थू-खैरा आकर राम बनते हैं, लक्ष्मण बनते हैं, वशिष्ठ और विश्वामित्र बन जाते है, सो रामरतन को पसन्द नही। यह इस प्रकार राम की पैरोडी हो जाती है, लक्ष्मण का उपहास हो जाता है, राजा दशरथ की मिट्टी पलीद होती है और महाज्ञानी वशिष्ठ के मुँह से ज्ञान के बदले अज्ञान ही ज्यादा निकलता है। सो रामरतन रामलीला के इस पुराने ढर्रे में परिवर्तन करेगा।

और, वह रामरतन पांच दिन से परेशान है। वह कोई ऐसा बालक खोज रहा है, जो राम का पार्ट करे। ऐसा ही वह किसी साँवले-सलोने बालक की खोज मे घूम रहा है। तमाम ढूंढ़ आया, लेकिन रामरतन को ऐसा बालक नही मिलता। जो देखने में आते है, वे जी को जँचते नही। सब में एक-दो त्रुटियाँ अवश्य आगे आ जाती है। वैसा मनचाहा बालक नही मिलता। जाने मिलेगा भी या नही मिलेगा।

पाँचवें दिन रामरतन निराश हो गया। जब राम ही नही, तो रामलीला भी नही। वह थक गया, शरीर से भी, मन से भी। उसे लगा जैसे

वह कूड़े के अन्दर शालिग्राम ढूंढ रहा है। भला कहाँ मिलेगा? उसे लगा कि इस इतनी बड़ी धरती पर वह सब से ज्यादा लाचार प्राणी है। उसकी परेशानी में कोई उसका सहारा नही हो सकता। भला यह रामलीला का दल क्या हुआ कि परेशानी का भण्डार हो गया। वह थककर पार्क की एक बेंच पर बैठ गया। अगर राम का काम करने बाला बालक नही मिला, तो फिर रामलीला कैसे होगी?

वह देखता है कि एक वैसा ही अबोध, वैसा ही भोला, निर्मल-निश्छल, साँवला-सलोना बालक पार्क में तितलियों के पीछे दौड़ रहा है। कौन लड़का है? किसका लड़का है? अगर यह राम का पार्ट करे, तब तो फिर कुछ कहना ही नही।

उसने बालक को बुलाया—अपने पास बिठाकर उससे तरह-तरह की बातें पूछने लगा। लड़के ने कहा—मेरे पिता नही, मेरी माँ है। वह क्या करती है, सो मैं नही जानता। हमारे घर में तीन गाये है। माँ उसका दूध दुहती है। एक ग्वाला आकर उसका दाम दे जाता है। हमारे एक मामा हैं, सो बड़ी दूर रहते हैं। रंगून कहाँ है, जानते हो? हमारे मामा वहीं नौकरी करते हैं। जब वे आयेंगे, तो मेरे लिए एक दोना मिठाई लायेंगे और एक रबर की गेंद लायेंगे। फिर वे मेरे लिए कोट सिला देंगे और हाफपैंट खरीद देंगे। फिर कोई तकलीफ नहीं रहेगी।

इस बालक को पाकर रामरतन ने मानों आसमान का चाँद पा लिया। राम के लायक ऐसा बालक मिलना असम्भव था। थोड़ी देर के बाद वह उस बालक की माँ के सामने खड़ा था और उसकी शंकाओं का समाधान कर रहा था। उसकी माँ को जो हिचक थी, सो रुपयों की आवाज सुनते ही मिट गयी।

रामरतन ने बालक से पूछा—क्यों भाई, राम का पार्ट करोगे न?

करूँगा!—बालक ने सरलता से जवाब दिया।

तीर चलाकर तब तुम ताड़का को कैसे मारोगे?

बालक ने छोटी-सी धनुही से तीर का एक ऐसा सरल सन्धान

मौसमों में यहां रहते हैं और जंगली जानवरों से कोई भय इन को नहीं रहता है। चौकीदार की अवस्था लगभग साठ साल की होगी। अब तो वह सब काम नहीं करता है। उसका लड़का, चार साल हुए फौज से छूट कर आया है और वही सब काम करता है। अफसरों ने वादा किया है कि उसे वे शीघ्र ही पक्का कर देंगे व बूढ़े की पेंशन भी चालू हो जायगी।

हवा बिलकुल बन्द-सी थी और बड़ी उमस हो रही थी। लगता था कि उस गरमी में हम पिघल जायेंगे। वह बूढ़ा ताड़ के एक पुराने पंखे से हवा करने का निरर्थक-सा प्रयास करने लगा। गरमी से परेशान होकर मैं गुसलखाने पहुँचा और गरम-से पानी में नहा कर बाहर आया। बिस्कुट का एक टुकड़ा दाँतों में दबा कर चबाया और चाय के दो प्याले पी गया। मेरा साथी ठेकेदारों तथा और सरकारी अधिकारियों से बातें कर रहा था। सरकार अपनी नयी योजना के अन्तर्गत यहाँ की धरती पर फौज से छूट कर आए हुए लोगों की बस्ती बसाना चाहती थी। पेड़ों को बड़ी-बड़ी मशीनों से उखाड़ कर, फिर उस धरती के हृदय को ट्रैक्टर से चीर कर उसकी कल्पना एक नयी दुनिया बसाने की थी। यह कल्पना पाँच साल तक दिल्ली के लाल-फीतों वाली फाइल से निकल कर, फिर दो साल तक लखनऊ की फाइलों से उड़ कर अब यहाँ पहुँच सकी थी।

साँझ हो आयी थी और मैं बरामदे में खड़ा हो कर सामने दूर तक फैले हुए विशाल जंगल की ओर देख रहा था। वह स्वस्थ और सबल जंगल जाने क्यों मन में एक अज्ञेय-सा बल प्रदान करने लगा। गरमी अभी भी उसी भाँति पड़ रही थी और मन बेचैन-सा था। मैं अनमना सा बाहर आकर टहलने लगा। इस स्थान का यह मेरा पहला ही अनुभव था। अब कुछ रात-सी पड़ने लगी थी। तभी पाया मैंने कि दक्षिण की ओर से एक भारी-सी आवाज़ आयी और वह लगातार समीप-सी सुनाई पड़ रही थी। मैं चौंक-सा उठा कि क्या बात होगी और उधर बढ़ा; पर आगे धुंधले में कुछ भी साफ-साफ नहीं दीख पड़ा। फिर वह आवाज़ तो जंगल की ओर से लगातार प्रतिध्वनित हो रही थी। उसका वेग कम नहीं हो रहा था। इसके पहले

अपने स्वार्थ के लिए रौंदता है, इससे सभी परिचित हैं। राह में एक मरा चीतल, एक विशाल वड़ के पेड़ की छाया में पड़ा था और चीलें तथा काले पंखों वाले भयानक गिद्ध चारों ओर चक्कर काट कर उस पर झपट रहे थे। लोमड़ियाँ और जंगली कुत्ते भी अवसर पाकर वीच-वीच में उसे नोच लेते थे।

ड्राइवर ने हमें बताया था कि रात को चीते ने उस जानवर का शिकार किया होगा तथा पेट भरने के बाद झाड़ियों में इसे छुपा गया होगा। जंगल में सब आज़ाद हैं। लोमड़ियों ने उसकी गन्ध पाकर झाड़ियों के बीच से हटाकर यहाँ डाल दिया और सब अपना-अपना हिस्सा बाँट रहे थे। चीते को गंध का ज्ञान नहीं होता है। वह अपनी शक्ति के बल पर शिकार करता है और निर्बल लोमड़ियाँ गंध के ज्ञान के कारण ही तो अपना भोजन पाती हैं। जब कि हम एक सँकरे रास्ते से गुजर रहे थे, जिसके दोनों ओर बाँस के बड़े-बड़े जंगल थे तो हिरनों का एक गिरोह हमारी कार के आगे से चौकड़ी भरता हुआ निकल गया था। ड्राइवर ने कार धीमी न कर दी होती, तो वह जरूर किसी जानवर से टकरा गयी होती। जंगली मुरगियाँ तथा और पक्षी स्वच्छन्दता से उड़ रहे थे। मानों कि वे निर्भय हों। एक बड़ा हरे से रंग का मटमैला साँप तो कार के पहिये से चिपका हुआ बड़ी दूर तक चला आया था। यह सब देख कर सोचा कि आदि-मानव को कितना संघर्ष करना पड़ा होगा! आज तो वह अपनी बुद्धि पर अधिक भरोसा न करके आपस ही में एक दूसरे का शोषण करना सीख गया है। शासन करने की उसकी लिप्सा बढ़ गयी है।

खानसामा ने बाहर बरामदे में कुरसियाँ डाल दी थीं और हमारे नौकर ने सामान कमरों में लगा दिया था। इस डाक बंगले में गरमियों में बहुत कम अफसर टिकते हैं। अधिकतर शिकारी व अधिकारी जाड़ों में शिकार खेलने के लिए आते हैं। चौकीदार ही खानसामा का काम करता है और वह साहब लोगों की रुचि के कुछ सामान भी रखता है। भंगी को भी सरकारी वेतन मिलता है और वह मुरगियों का बाड़ा रखता है। साहब लोग ईनाम दे जाया करते हैं और उनकी आर्थिक स्थिति बुरी नहीं है। ये लोग सभी

निश्चित करने के लिये आये थे; अतएव हर एक ठेकेदार चाहता था कि उनको खुश करके कृपा का पात्र बन जाय।

रात को हम खाना खा रहे थे। हम सब मिलकर सात व्यक्ति थे। पास की नदी से पकड़ी हुई मछलियाँ तथा जंगल से पकड़कर लायी गयी मुर्गियों का गोश्त था। इसके अतिरिक्त ठेकेदार समाज की अपने उपयोग के लिए लायी हुई विलायती शराब की बोतलें थीं। खाने में काफी गम्मत रही और दो-तीन ठेकेदारों की हालत तो यह थी कि वे बिल्कुल बेहोश होने पर भी पेग पर पेग चढ़ा रहे थे कि कोई यह समझ न बैठे कि वे पीने में कमजोर हैं। मैं जंगली मुरगी की हड्डियाँ चबा रहा था। मछली का शोरबा भी मैं काफी पी गया। तभी मैंने एकाएक अपने साथी से पूछा कि यह भौंतू नदी में क्या चला करता है। मेरी उस अज्ञानता पर सब-के-सब अवाक् मुझे देखते रह गये। दोस्त ने बताया कि आज के पहले सुलतान भौंतू की फौज इसी तेजी से जंगल पार किया करती थी। सालों तक उसने हमारी सरकार को नाकों चने चबवाये थे। मीलों तक फैले हुए इस तराई भाबर में उसका राज्य था।

'सुलताना भौंतू' एकाएक मेरे मुँह से छूट पड़ा।

उस वातावरण में मेरे शब्द छुप गये। उस व्यक्ति की बात बहुत पुरानी हो गयी। वह एक साधारण डाकू था, जिसे कि किसी अंग्रेज पुलिस अधिकारी ने पकड़ा था और कानून में उसे फाँसी की सजा दी थी।

: दो :

नौ बज गये थे। और सब लोगों को विदा करके मेरा साथी मेरे पलंग के पास आराम कुर्सी पर बैठ गया। मुझे नींद नहीं आ रही थी। उसने मुझसे पूछा—"सुलताना के बारे में जानना चाहते हो?"

"सुलताना के?" मैंने आश्चर्य में दोहराया।

"हाँ, बूढा गोबरसिंह उसे भली-भाँति जानता था और जब जवान था, तो उसके तूफानी हमलों में कई बार शरीक हुआ था।"

गोबरसिंह, वह बूढ़ा खानसामा सुलताना के साथ रह चुका है, जान

कि सवाल करूँ, चौकीदार ने बताया कि भौंतू चल रहा है। उस प्रदेश की वह भाषा मेरी समझ में नहीं आयी। यह तो बता चुका था कि सामने जो नदी बह रही है, उसमें बहुधा संध्या को इसी प्रकार तेज आँधी चला करती है। उस आँधी की आवाज़ को सुन कर लगता था कि पुराने ज़माने की कोई बहुत बड़ी सेना उधर से गुज़र रही है। फिर भी वह भौंतू का चलना एक कौतूहल की बात थी।

नदी की ओर जाने का प्रयास करना उस समय ठीक नहीं लगा। सुबह वहाँ जाने का निश्चय करके मैं लौट आया। सामने जंगल से किसी जानवर की, तो कहीं किसी पक्षी की तेज़ भयावनी चीख कानों में पड़ती थी। दोस्त ने बताया था कि इस जगंल में इस समय एक चीता मादा अपने बच्चे के साथ रहती है। वहाँ का एक निवासी तो बता रहा था कि इस समय जितने जानवर वहाँ हैं, साहब चाहें तो कल वह उनको अच्छा शिकार करवा सकता है। वह नौजवान लड़का सारी बातों का वर्णन करते हुए उत्तेजित हो उठा था। उसने तो यह भी बताया था कि चार-पाँच रोज पहले, जब कि वह जंगल में भैंसें चराकर लौट रहा था, तब उसने उस चीते को अपने बच्चे के साथ नदी के पास वाली खादिर में देखा था। उसका विश्वास था कि वह वहीं पर बाँस की घनी झाड़ियों के बीच रहती है। वहाँ पर नदी के कारण नमी रहती है, पानी भी उसके समीप है।

उस निर्भीक सत्रह-अठारह साल के लड़के की बातों को सुनकर कौतूहल हुआ था। वह तो स्वयं एक बार चीते के पंजों के पीछे-पीछे वहाँ तक गया था और उसने पाया था उस समय वह वहाँ लेटी हुई थी। यदि वह उस पर हमला करती, तो क्या होता? यह बात उसने न तब सोची और आगे भविष्य में भी ऐसा अवसर आयेगा, तो भी वह नहीं सोच सकेगा। कारण कि रोजाना जीवन में जंगल के जानवरों से भेंट होती ही रहती है और मौका पड़ने पर तत्काल मोर्चा भी उस स्थिति के अनुसार सोचा जा सकता है। और लोगों ने भी शिकार के लिए निमंत्रण दिये। दोस्त एक बड़े ओहदे पर नियुक्त होकर वहाँ की जाँच व प्रारंभिक कार्य की रूपरेखा

धमकी भी दी थी कि वह उसे पुलिस में दे देगा। तभी मुझे ज्ञात हुआ था कि वह कौन व्यक्ति है। उसे यदि बेईमान साहूकार घबराते थे, तो यह ठीक ही था। उससे स्वयं मुझे प्यार हो गया था। उस सरल व्यक्ति ने मुझे मोह लिया था। यही कारण था कि गरीब जनता उसे प्यार करती थी। हर एक अपनी जान की बाजी लगा कर भी उसकी रक्षा करना चाहता था। गरीब दुखिया का वह बेटा था। जहाँ भी कोई मुसीबतजदा दिखाई पड़ता, वह वहाँ पहुँच कर उसकी मदद करता था। कभी उसने बे-कसूर को नहीं सताया था। सरकारी वेतन पाने वाले पुलिस के जासूस कभी भी जनता के हृदय को नहीं टटोल सकते थे। और सुलताना तो उसी जनता के हृदय में छुपा रहता था। हर एक उसे आश्रय देना अपना गौरव समझता था।

"मैं भी तीन साल से उसके साथ रहा। उसे सभी जंगलों की पूरी-पूरी जानकारी थी। उसका प्यारा कुत्ता सदा उसके साथ रहता था। जंगली पशु भी शायद उस सहृदय व्यक्ति को पहचान गये थे। वह जानता था कि एक अँगरेज़ अधिकारी उसे पकड़ने के लिए तैनात किया गया है। लेकिन कभी उसने उसकी हत्या करने की नहीं ठहराई। वह तो एक बार उस पुलिस के ही अफसर से निहत्था ही मिला था और उसे एक तरबूज भेंट करके कहा था कि वे बेकार एक डाकू के पीछे अपनी जान जोखिम में डालते हैं। उसने सावधान किया था कि सुलताना अपने दुश्मन को भी धोखे से नहीं मारता और न पीछे से हमला करता है। यह भी जानता है कि वे अपने परिवार से दूर यहाँ नौकरी के लिए आये हैं। उनकी उनसे कोई लड़ाई नहीं है। साहब ने समझौते की बात चलाते हुए कहा था कि वह बिना किसी शर्त के यदि सरकार की शरण में आ जाये, तो सरकार उसकी माफी पर विचार करेगी। इस पर वह हँसा था कि एक सिपाही माफी कभी नहीं मांगता। वह तो केवल हार या जीत ही जानता है।

"बदमाशों के लिए सुलताना का नाम परेशानी पैदा करता था। उसकी आँखों में कभी कोई अपराध छुपा नहीं रहता था। मानों सोना लूटनेवाला सुलताना सब कुछ गरीबों को बाँट देता था। उसके हाथ

कर मुझे बड़ी खुशी हुई। दोस्त ने बताया कि शुरू-शुरू में तो वह रोज संध्या समय नदी के किनारे चलती हवा को सावधानी से सुना करता था। उसकी धारणा थी कि सुलताना मरा नहीं है। इस दुनिया में कोई उसे मार नहीं सकता। उसे लोगों ने बताया था सुलताना को सरेबाज़ार सिपाहियों से घिरा कचहरी जाते हुए देख चुके हैं। उसके पाँव में बड़ी-बड़ी बेड़ियाँ व हाथों में हथकड़ी पड़ी रहती है।

और वह बूढ़ा गोबरसिंह तो हँस पड़ा था। हँसते-हँसते उसकी आँखों से आँसू की धारा वह निकली और फिर उसकी सिसकियाँ बँध गयीं। मैं समझा कि वह पागल हो गया है। दोस्तों ने शराब का एक पेग उसे दिया और अब तो नशे में उसकी आँखें चमक उठी थीं। उसने बाहर जाकर दो-तीन बार थूका और फिर जोर से बोला—"नमकहराम, जो कि कभी डर से सुलताना के आगे नहीं पड़ते थे और उसका नाम सुनते ही जिन-को कँपकँपी आने लगती थी, उनकी हिम्मत पड़ी कि वे सुलताना को बेड़ियाँ पहनावें।"

गोबरसिंह अब भीतर पहुँचा और कहने लगा—"सरकार, वह देवता था। मेरा वास्ता पहले-पहल तब उससे पड़ा, जबकि मैं रुपये न होने के कारण अपने पुरखों की जमीन का पट्टा साहूकार के नाम लिख आया था। वह खानदानी कर्जा कई पुश्त से नहीं दिया जा सका तथा और उसको चुकाने का सामर्थ्य मुझमें नहीं था। साहूकार से हमेशा किसी-न-किसी काम के लिए कर्ज़ निकालना पड़ता है। उससे झगड़ा करके गाँव में कोई नहीं रह सकता है।

"पुरखों की जायदाद को कर्ज़ में चुका कर मैं फुर्ती से घर लौट रहा था कि जंगल की राह पर मुझे एक नौजवान मिला। उसने मुझसे शहर का समाचार पूछा। वह न जाने कैसे जान गया कि मैं बहुत दुखी हूँ। फिर मेरी सारी बातें सुनकर उसने अपने कमर से एक थैली निकाल कर मुझे दी और कहा कि साहूकार के यहाँ जाकर अपना पट्टा वापस ले लूं: पर इससे पहले कि मैं उसे धन्यवाद दूं, वह चला गया था। साहूकार ने रुपया लेकर कहा था कि वह चोरी का माल है, जो कि उसे भौंतू ने दिया है। उसने

बड़े घरानों के बच्चे को जब बनाया जाता था—यहाँ उपनिवेश के इस नागरिक को खूनी और बदमाश बताया गया होगा; लेकिन उसकी कहानी तो यहाँ का बच्चा-बच्चा जानता है। हर एक चाहता है कि उसका बच्चा वैसे ही नेक, सहृदय, चरित्रवाला और बहादुर बने। वह उस धरती का बेटा था, जिसका शोषण करने के लिए अँग्रेज आया था। तराई का चप्पा-चप्पा आज भी उसके जीवन की घटनाओं की गूँजों से भरा हुआ है।

भौंतू चल रहा है, यह सुनकर मेरे मन में कम कौतूहल नहीं हुआ था। वह गति कैसी स्वस्थ थी। वह बूढ़ा चला गया था और सोने के पहले दोस्त ने पूछा—"जानते हो, यह यंग कहाँ है ?"

"यंग ? वह पुलिस का सिविलयन-अधिकारी, जिसने भौंतू को गिरफ्तार किया था।"

"वह आजकल मलाया में—विद्रोहियों को दबाने में—मोरचाबन्दी कर रहा है। मलाया की जनता को कुचलने का प्रयास।"

: तीन :

और अगले दिन मैं शाम को कार से रेलवे स्टेशन पर पहुँच गया था। दोस्त ने मुझे विदाई दी। शाम का वक्त था। सूर्य की लाली पश्चिम में फैल रही थी। गाड़ी तेजी से चल रही थी। सामने एक पुराने क़िले के अवशेष दिखलाई पड़े। पूछने पर सहयात्री ने बताया कि इसी क़िले में जरायम पेशे वाले लोगों को सरकार रखती थी और सुलताना का बचपन इसी में कटा था। यहीं से भाग कर वह स्वतन्त्र हुआ था।

वह क़िला पीछे छूट गया और सोचा मैंने कि यदि उस व्यक्ति को अवसर मिला होता...।

लेकिन डाक बँगले के पास बहती नदी तो सदा बहती रहेगी और गरमियों की संध्या में सदा ही वहाँ भौंतू चलेगा....!

●

सदा खाली रहते थे । वह कभी शराब नहीं पीता था। एक बार उसके दल के कुछ साथियों ने एक बारात लूटी थी। एक मनचला नववधू को भी पकड़कर ले आया था। सुलताना ने जब सुना, तो उस युवती को स्वयं उसके पिता को सौंप कर माफी माँगी थी। उस युवती की बहन की विदाई में सोने के गहने भी दिये थे।

"सरकार ने अपनी सारी शक्ति लगा दी थी। जिस गांव पर भी उसे आश्रय देने का शक होता, वहां पुलिसवाले पहुँच कर मनमाना अत्याचार करते थे। सैकड़ों निरपराध युवकों को पुलिस पकड़ कर ले जाती कि वे उसकी सहायता करते हैं। गाँवों को उस प्रकार लूटने का हाल सुन कर उस का हृदय काँप उठता था। इसीलिए एक दिन उसने अपने चुने हुए साथियों के अलावा सब को विदा कर दिया था। वे उसे नहीं छोड़ना चाहते थे; पर उसकी आज्ञा का उल्लघंन करने की शक्ति किसी में न थी। विदाई के दिन वह बहुत दुःखी था; पर बेबसी में क्या करता।"

गोबरसिंह उस के बाद का समाचार इतना ही जानता था कि सुल-ताना को फाँसी लगी थी। उसको पूरा विश्वास था कि सुलताना चाहता तो कोई शक्ति उसे पकड़ नहीं सकती थी। वहाँ की सारी जनता का वह प्यारा बेटा किसी की पकड़ में न आता। यह उस देश के कलंक की बात होती। सुलताना एक दिन इसलिए अपने साथियों के साथ युद्ध करता हुआ पकड़ा गया था। वह बहादुर सिपाही था, इसलिए उसने आत्महत्या स्वीकार की। तो वह दिखा देना चाहता था कि अंग्रेज़ की कचहरी वाला न्याय कितना झूठा है।

सुलताना अपने प्यारे कुत्ते को उस अंग्रेज़ अफसर की संरक्षता में सौंप गया था, जिसने कि उसे पकड़ा था। इन जंगलों में रहकर उसने मानव हृदय पाया था। दुनिया में इतने सहृदय व्यक्ति शायद कम पैदा होते हैं। पुलिस विभाग में सैकड़ों फाइलें मिलेंगी, जिन में कि पेशेवर पुलिस के अधिकारियों की झूठी रिपोर्टें होंगी। न्यायालय की फाइलों में—जहाँ कि इंग्लैंड के

चपरासी ने मेरी ओर संकेत कर के कहा—'आप भी बस लौटे ही जा रहे थे।'

'अच्छा ठीक, आप ? नहीं, नहीं, अब मैं आ गया हूँ। खाली हाथ जाइयेगा ? बैठिये। अभी कार्ड बनाता हूँ।' मिस्टर पिल्ले ने बड़ी शिष्टता से मुझसे कहा। फिर दूसरे ही क्षण चपरासी से कहा—'देखो, जरा ताँगेवाले को एक रुपया दे दो।'

'हुजूर मेरे पास.....'

'अरे तुझे कौन कहता है ? किसी बाबू से ले कर...'

'चपरासी खाली हाथ लौट आया, बोला—'साहब...'

तब मिस्टर पिल्ले ने मेरी ओर देखा।

मुझे कार्ड बनवाना था। ऐसा न करने से बाधा भी उपस्थित हो सकती थी। मैं तपाक से बोला—'हाँ साहब मैं दिये देता हूँ, यह लीजिये।'

मेरे हृदय में जैसे किसी ने पिन चुभो दी हो; लेकिन पिल्ले साहब ने तुरन्त चपरासी से कहा—'सभी कंगाल तो नहीं हैं यहाँ ? जा ताँगे वाले को ......'

चपरासी चला गया और लगभग एक घण्टे में मेरा कार्ड भी बन कर तैयार हो गया। मिस्टर पिल्ले उसी समय से मेरे अन्तरंग मित्र ही नहीं बने, बल्कि अध्ययन की पुस्तक भी।

मिस्टर पिल्ले ने कई बार आग्रह करते हुए कहा था—'किसी दिन मेरे बँगले पर भी तशरीफ लाइए।'

मैं टालता जा रहा था; क्योंकि मेरे और उन के संस्कारों में बड़ी भिन्नता थी। उनकी स्वीकृति मेरे निकट अस्वीकृति थी और उनकी अस्वीकृति मेरे लिए स्वीकृति थी।

एक दिन मेरे जी में आया चल कर मिस्टर पिल्ले का दर्शन करूँ, और मिस्टर पिल्ले के बँगले को खोजता उस हाते में जा पहुँचा, जहाँ का उन्होंने हवाला दिया था। एक बच्चे से मैंने पूछा—'यहाँ पिल्ले साहब भी रहते हैं ?'

मिस्टर पिल्ले

लक्ष्मीचन्द्र वाजपेयी

दूर से उनकी गञ्जी खोपड़ी पीतल के स्वच्छ कटोरे की तरह चमकती प्रतीत होती। कानों के ऊपर दोनों ओर वाल हैं। क़द छोटा, ठिगना। आवश्यकता से अधिक स्थूल शरीर। कभी-कभी कुर्सी पर वैटने के पश्चात् जव उठ कर खड़े होते हैं, तव कमर के दोनों कूल कुर्सी के हत्थों के वीच ऐसे फँस जाते हैं कि कुर्सी भी उन्हीं के साथ उठ खड़ी होने का उपक्रम करने की हठधर्मी करती है। दाँत स्वच्छ मोती की तरह चमकदार, किन्तु सामने के दो गायव। सिगरेट के वजाय सिगार खुले दाँतों के रिक्त स्थान की अच्छी पूर्ति करता है। आँखों पर चश्मा है, पुरानी चाल का, परन्तु जव वे निकट किसी से वातें करते हैं, तो शीशे के बीच में न देख उसके ऊपर से आँख चढ़ा कर देखते हैं। ओंठ मोटे और भद्दे, जो तलवार छाप मूछों की शोभा को प्रसारित करने में भयंकर बाधा उपस्थित करते हैं। यह हैं, मिस्टर पिल्ले ?

परिचय ?—परिचय भी इसी प्रकार हुआ। मैं राशन ऑफिस कार्ड वनवाने गया था। एक वावू ने कहा—'पिल्ले साहव वनायेंगे। आते ही होंगे, समय हो चुका।'

मैंने सोचा, कल आकर वनवा लूंगा और चलने को हुआ कि चपरासी ने कहा—'आ गये पिल्ले साहव, आज वहुत देर कर दी, साहव ने।'

चपरासी के निकट आकर वोले—'क्यों ? ठीक ठाक तो ?

'जी, लोग आप का इन्तजार कर रहे हैं, कुछ वेचारे तो लौट भी गये।

'जो गये जाने दो, उनकी चिन्ता क्या ? है कौन यहाँ अब ?'

'कौन वे पादरी साहब ? वह, वहाँ जाइये ।' लड़के ने एक दिशा की ओर संकेत कर दिया।

मैं विचार करने लगा—ये तो मद्रासी हैं, किन्तु पादरी कैसे और कब हो गये ?

मैं सामने जा खड़ा हुआ। देखा—निहायत गन्दी कोठरी, बहुत तंग, दिन में मच्छरों की भनभनाहट, कोठरी के सामने कूड़े का ढेर। चारों ओर की छोटी-छोटी कोठरियों में हरिजन, कोरी और चटाई बनाने वाले रहते हैं। हाते के धुएँ ने सूर्य की रोशनी को मंद-सा कर दिया है। और उस कोठरी में दो स्त्रियाँ लड़ रही हैं। लड़ाई मद्रासी भाषा में हो रही थी, जो निश्चय ही ध्यान से सुनने की उत्सुकता पैदा कर रही थी। आपस के कुछ अनपढ़ उस वाक्-युद्ध का आनन्द ले रहे थे। और कभी-कभी बीच में व्यंग्य से मुस्कराते भी थे।

ये दोनों मिस्टर पिल्ले की ही पत्नियाँ हैं, यह रहस्य मुझे उसी दिन, उसी छण मालूम हुआ।

मैं भी सुनता रहा। जो कुछ भी समझ में आया, वह यह कि झगड़ा रोटियों को लेकर हो रहा है। मिस्टर पिल्ले की स्थिति गम्भीर है। आज उनकी जेब कतई खाली है। यदि डबल रोटी की व्यवस्था हो जाती; तो मामला सम्हल जाता; किन्तु मिस्टर पिल्ले मजबूर हैं। इतना होने पर भी एक अन्याय और भी कर रहे हैं। वे पक्ष लेते हैं, अपनी उस पत्नी का जो भोंडी और स्थूलकाय है।

मैं खड़ा-खड़ा ऊब रहा था कि पिल्ले साहब की दृष्टि मुझ पर पड़ी। वे झट बाहर निकल आये बोले—'मूर्ख हैं, ये देहाती।'

मैंने कहा—'बात सच है; लेकिन यह सँभालिए पाँच का नोट और फिलहाल जिन वस्तुओं को लेकर झगड़ा हो रहा है, जिनकी कमी है, उन्हें मँगा लीजिए।'

उन्होंने शीघ्र ही—सधन्यवाद—नोट ले लिया और उसे उन दोनों के बीच में फेंकते हुए कहा—'यह लो, किन्तु अब चुप रहो।'

नहीं हैं। उनकी एक पत्नी बाहर निकली और बोली—'आप मेरे पतिदेव को चाहते हैं ?'

मैंने मुसकरा कर उत्तर दिया—'अवश्य, उन्हीं की तलाश में आया हूँ।'

उंगली से सामने की ओर इशारा करके बताया— वे हैं।

मैं निकट गया। देखा—एक टेबिल पर एक होल्डाल लिपटा रखा है और सिर तथा पैर उस के बाहर हैं। वे सोये हुए हैं मुझे यह देख कर आश्चर्य हुआ कि यह बिस्तर नहीं, मिस्टर पिल्ले हैं।

जगाने पर मालूम हुआ—दिन में उन्होंने आज ज्यादा पी ली थी; तबीयत भारी रही, 'इसीलिए इस प्रकार सो गये हैं।'

मैंने अपनी मुसीबत कही, और उन्होंने रास्ता बता दिया। मैं सन्तुष्ट हो गया।

मैंने पूछा—क्या तबीयत ठीक नहीं है ?

उत्तर मिला—'सो तो है ही। सैकड़ों की हानि भी हो गयी।'

'वह कैसे ?' मैंने प्रश्न किया।

उससे आपका कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। उसे जाने भी दो मिस्टर वाञ्चू !

मैं उन्हें नमस्कार कर घर लौट पड़ा। रास्ते में सोचता आगे बढ़ रहा था कि आज वे इतने सुस्त क्यों थे—शायद किसी से रिश्वत मिलने वाली होगी, हाथ से शिकार निकल गया होगा दूसरा और कारण हो क्या सकता है ?

इतने में मिल गये मिस्टर यज्ञदत्त। इनसे मेरी पुरानी जान-पहचान है। हरफनमौला आदमी हैं। उन्होंने पूछा—'क्यों भाई, आप मिस्टर पिल्ले को कैसे जानते हैं ?'

'जानता कहाँ हूँ, जानने की चेष्टा कर रहा हूँ; किन्तु उन्होंने मेरे सारे प्रयत्न बेकार कर दिये।'

'कैसे ?'

'कहीं पर भी उन्हें समझ नहीं पाया, आप की बात का केवल इतना ही

देखिये न, आंख में धूल डाल कैसे चम्पत हुआ है ? अच्छा, अब वच्चू से निपट ही लूंगा।

मिस्टर पिल्ले के क्रिया-कलाप मुझे विचित्र से लगे। मुसकराकर घर की ओर चल पड़ा।

दूसरे ही दिन, सचमुच ही मिस्टर पिल्ले हास्पिटल में दाखिल कर दिये गये थे, जो एक ओर 'स्प्रिंगदार वेड' पर लेटे चोटों का आनन्द ले रहे थे।

समाचार मिलने पर मैं उन्हें देखने हास्पिटल जा पहुँचा। देखा—उन की एक टाँग और एक हाथ ऊपर उठाकर वाँध दिया गया है।

सहानुभूति के स्वर से पूछा—'यह सब क्या मिस्टर पिल्ले ?'

'हाथ पैर झूला झूल रहे हैं; कोई विशेष बात नहीं।'

'आखिर यह सब हुआ कैसे ? कहीं झगड़ा फिसाद .... ?'

'कतई नहीं। मेरी किसी से दुश्मनी ही क्यों होने लगी ? मैंने किसी का विगाड़ा ही क्या है ?—यह सब मोटर-दुर्घटना का परिणाम है।'

मैं ठहाका मार कर हँस पड़ा। मिस्टर पिल्ले ने पूछा—'आखिर हँसी कैसे आयी ?'

'साहस कर' मैंने उत्तर दिया।

'चिन्ता क्या ? दो दिन में जैण्ट होकर फिर आता हूँ, मिस्टर वाच्चू ! यह सब चलता रहता है।' कह कर उन्होंने मुझे सर हिला कर वहाँ से चले जाने की आज्ञा दे दी।

ज्यों ही हास्पिटल के बाहर आया, त्योंही फिर ठहाका लगा कर हँस पड़ा— अपने प्रभु के गुणगान के उपलक्ष्य में।

० ० ०

उस दिन मेरे यहाँ अनेक अतिथि आ गये थे। राशन की कमी देखकर अनायास ही पिल्ले साहब का स्मरण हो आया। सोचा मैंने—अब उन्हीं की शरण लेनी चाहिए।

सन्ध्या का समय उनके वँगले पर जा पहुँचा। देखा मिस्टर पिल्ले

मिस्टर यज्ञदत्त कहते रहे—पिल्ले साहब वहाँ से खिसक आये। दूसरे दिन वे एक स्वर्णकार के यहाँ पहुँचे थे, और अपनी पत्नी का हार बेच रहे थे। स्वर्णकार ने उसे कई बार कसौटी पर घिसा और उत्तर दिया—'साहब यह चोरी का माल दिखता है। मुझे माफ कीजिये।'

दूसरे दिन की घटना मुझे उन के एक अन्तरंग मित्र से मालूम हुई। मिस्टर यज्ञदत्त ने कहा—'इतना ही नहीं, उस दिन संध्या समय जब मैं मिस्टर पिल्ले के साथ वायुसेवन के लिये जा रहा था और शबनम की कोठी के नीचे से गुजरा, तो ऊपर से आवाज आई—आइये न साहब, आज हार नहीं ले जाइयेगा? मैंने सम्पूर्ण घटना-चक्र को समझ लिया।'

मिस्टर यज्ञदत्त की बातें सुनकर मैं ठहाका मार कर हँस पड़ा और घर की ओर चल पड़ा। रास्ते भर मैं मिस्टर पिल्ले के चरित्र की बारीकियों को सोचता रहा और घर आया, तो देखा—पिल्ले साहब उपस्थित हैं। मैंने पूछा—'क्यों, कैसे?'

बोले—'पाँच रुपया दीजिये मिस्टर बाञ्चू! वाइफ को कालरा हो गया है और दवा-दारू की व्यवस्था करनी है।'

मैं कुछ भी उत्तर न दे सका और जेब से सहानुभूतिपूर्वक पांच रुपये निकाल कर उनकी भेंट कर दिये।

० ० ०

इधर मैं बहुत दिनों से मिस्टर पिल्ले से नहीं मिला; किन्तु सुनने में आया, वे नौकरी से घूसखोरी के अपराध में, अलग कर दिये गये हैं।

लेकिन जैसे मिस्टर पिल्ले पर प्रभू की सदैव कृपा होती रही। सन्ध्या को जब उस दिन मैं अपने मित्रों के साथ वायुसेवन के लिये जा रहा था, तब देखता हूँ—मिस्टर पिल्ले विचित्र ड्रेस में खड़े हैं। मस्तक पर एक बैटरी लगा रखी है। शरीर सूट-बूट से लैस है। सर पर बढ़िया नाइट कैप है। एक बूढ़ा सेवक खजूर का बड़ा पंखा पीछे खड़ा झल रहा है। वे उच्चकोटि के मंजन बेच रहे हैं और दूर की हाँक रहे हैं।

मैं जो अनायस वहाँ जा खड़ा हुआ, तो उनकी दृष्टि मुझ पर आ पड़ी।

उत्तर हो सकता है; लेकिन चूँकि मैं उनसे दिलचस्पी लेता हूँ, इसलिये उन्हें छोड़ना भी अच्छा नहीं लगता। कभी-कभी तो मुझे उन पर बड़ी दया आती है और विषम प्रतिकूल परिस्थितियों से घिरा देख सहानुभूति भी...।'

'अजी, आज तक तो मैं ही अपने को तीसमारखाँ लगता था, लेकिन उन्होंने तो हम लोगों को भी पीछे छोड़ दिया।'

'क्या मैं भी आप से उनके सम्बन्ध में कुछ विशेष जानकारी प्राप्त कर सकता हूँ?'

तो सुनिये! 'लेकिन सब कुछ गोपनीय है।'

'कतई विश्वास रखिए।' मैंने उत्तर दिया।

मिस्टर यज्ञदत्त ने कहना प्रारम्भ किया—कल अपनी मित्र-मण्डली के साथ हम लोग शबनम के यहाँ जा रहे थे। रास्ते में मिल गये मिस्टर पिल्ले। बोले—'मुमकिन है, मेरी उपस्थिति आप लोगों को अप्रिय मालूम हो।' उनके इस वाक्य का अर्थ था, यदि उन्हें प्रसन्नतापूर्वक नहीं ले जाया जायगा, तो उनके वहाँ पहुँचाने का भी सन्देह किया जा सकता है। हम लोगों ने उन्हें भी ले लिया। वहाँ पहुँचने पर हम लोग ताश खेलने और पीने-पीलाने में लग गये और मिस्टर पिल्ले लेटे-लेटे जाने का विचार करते रहे। पी चुकने के बाद उन्होंने अपने लेटने का स्थान चुना टेबिल, जिस पर शबनम बहुधा बैठ कर लिखा-पढ़ा करती है। कुछ समय तो वे धैर्य से लेटे रहे और बाद में उठ खड़े हुए और अचकचा कर बोले—'मिस्टर यज्ञदत्त, मुझे आज्ञा दीजिये। अब न रोकिये, बिलकुल न रोकिये।' मैंने पूछा—'क्यों? क्या बात हो गई?'

मिस्टर पिल्ले ने उत्तर दिया—'अभी-आपके मिलने के पूर्व मैं 'व्हाइट हाल रेस्टराँ' में चाय इत्यादि ले रहा था। मेरे हाथ में बैग था और उसमें कुछ सरकारी कागजात तथा १५० रुपये थे। मैं उसे वहीं भूल कर चला आया हूँ।'

सभी कह उठे—'फौरन जाइये साहब फौरन। यहाँ शिष्टाचार निभाने की अब आवश्यकता नहीं है।'

मैंने सिर हिलाते हुए अपनी स्वीकृति दे दी। फिर मिस्टर पिल्ले गरम हो पड़े और काबुली की ओर देख कर बोले—'कच्चा खा जाऊँगा कच्चा! समझा क्या है मुझे! तेरा काम है देना और मेरा काम है लेना! लेकर भी कोई वापस देता है? वह कोई दूसरे होंगे।'

भीड़ मिस्टर पिल्ले के साहस पर दंग थी। लोग कह रहे थे—'अच्छा आज काबुली को ब्याज दिया है, इस पट्ठे ने ! हिन्दुस्तानी जनता को ये लूटते हैं, लूटते! इनके साथ इसी तरह पेश आना चाहिए।'

काबुली और मिस्टर पिल्ले पुलिस की लारी में बैठ गये। लारी चलने लगी, तो मिस्टर पिल्ले ने प्रसन्नता पूर्वक मेरी ओर देखा और कहा—'अच्छा चलें दोस्त, अलविदा।'

इसके बाद कानपुर से मेरी बदली बनारस हो गयी। मैं अपनी पारिवारिक समस्याओं में ऐसा उलझा कि मिस्टर पिल्ले को केवल भूल ही भर नहीं गया, बल्कि ऐसा अनुभव हुआ, जैसे मेरा उनसे न कभी परिचय था और न कोई किसी प्रकार की जान-पहचान ही। कभी भी उनका काल्पनिक चित्र मेरे स्मृति-पट पर भूल से भी नहीं प्रतिबिम्बित हो सका।

एक दिन, संध्या समय, अपनी आवश्यक वस्तुओं को खरीद कर घर लौट रहा था। मैंने देखा—सामने मोटर साइकिल पर, फौजी पोशाक में, मिस्टर पिल्ले।

आश्चर्य से एक बार चकित हो गया। हाथ अपने आप—मोटर साइकिल को रोकने के लिए उठ गये।

साइकिल रुक गयी। मिस्टर पिल्ले ने फौरन ही पहचान लिया। बोले—'हेल्लो मिस्टर वाञ्चू! यहाँ कैसे?'

'बदली हो गयी।' मैंने उत्तर दिया।

अँग्रेजी मे उत्तर दिया—'बहुत अच्छा हुआ? आओ बैठो, साथ चलो।'

मैंने कहा—'कहाँ जाना है?'

अपने चारों ओर खड़ी भीड़ को संवोधित करते हुए उन्होंने कहा—'हाथ कंगन को आरसी क्या ? आप सव लोग मिस्टर वाञ्चू के दांतों को देख सकते हैं। कैसे अच्छे मोती जैसे दाँत हैं ? इनका सौन्दर्य इनके दांत हैं ! ये मेरे पुराने ग्राहक हैं और मेरा ही मंजन प्रयोग में लाते हैं इतना कह चुकने के वाद वे मेरे दाँत खोलकर भीड़ को दिखलाने लगे।

भीड़ मेरी ओर देखने लगी। मिस्टर पिल्ले ने कहा—'कहिए न साहव, आप को मेरा मंजन लगाते कितने वर्ष हो गये ?'

मेरे मुँह से अनायास ही निकल गया—'कई वर्ष !'

लोग मंजन की शीशियों को खरीदने लगे और पिल्ले साहव विक्री में जुट गये। मैंने अवसर पाकर राह ली। अपनी कमजोरी पर मुझे तरस आ रहा था, परन्तु कर ही क्या सकता था ? वह विवशता की असमर्थता थी।

लगभग पन्द्रह दिन पश्चात् चौराहे पर काफी भीड़ थी। मैं दफ्तर से घर लौट रहा था। पुलिस कई व्यक्तियों को घेरे खड़ी थी—उत्सुकतावश मैं अपनी साइकिल रोक कर नीचे आ गया। एक व्यक्ति से पूछा—"भाई क्या वात है ?"

"कावुली लड़ रहे हैं।"

'क्यों ?'

'पता नहीं !'

मैं भीड़ के निकट जा पहुँचा। दूर से देखा—कावुली खून से लथपथ है। इसी वीच कान में आवाज पड़ी—'मिस्टर वाञ्चू, मिस्टर वाञ्चू !

मैंने घूम कर देखा, तो मुँह से निकल गया—'मिस्टर पिल्ले ! क्या वात है ? यह सव क्यों ?'

'इसकी परवाह क्या ? अच्छे मौके पर मिले, सुनो तो' !

मैं मिस्टर पिल्ले के निकट आ गया। उन्होंने कान में कहा—'घर में कह देना जाकर, मैं तीन महीने के लिए कलकत्ते गया हूं। इस घटना का कतई जिक्र न करना, हाँ......।'

चुनौती

विष्णु प्रभाकर

बद्रीनाथ यात्रा का महत्व प्राचीन काल में चाहे जितना ही प्राकृतिक रहा हो, पर आज वह केवल धार्मिक है। यात्रियों की श्रेणी इस बात का प्रमाण है। सरकारी मार्ग पर लोक-परलोक बनाने वाले अधिकारियों को छोड़कर अधिकतर बूढ़े, स्त्री, पुरुष, विधवाएँ या वीतराग अथवा और किसी प्रकार से दुखी व्यक्ति ही मुक्ति की प्यास लिए, अपने थके और जर्जर चरणों से इस विकट मार्ग को नापते देखे जाते हैं। और फिर इन लोगों की यात्रा की अन्तिम सीमा; बद्रीनाथ के मन्दिर पर पहुँच कर समाप्त हो जाती है। उससे दो मील आगे भारतभूमि के अन्तिम गाँव माना या पांच मील आगे के हिम-प्रपात 'वसुधारा, को देखने कोई विरला ही जाता है। सतोपन्थ और अलकापुरी जाने की तो कल्पना करना भी दूर की बात है।

हमारे गोपाल बाबू इनमें से किसी श्रेणी में नहीं हैं। शरीर से क्षीण होने पर भी इन्हें वृद्ध नहीं कहा जा सकता। वीतरागी भी वे नहीं हैं, क्योंकि धर्म के नाम से वे उसी प्रकार भड़कते हैं, जिस प्रकार सांड़ लाल कपड़े से। इसलिए जब उन्होंने उत्तराखण्ड के दुर्गम पथ को ग्रहण किया, तब एक धर्मभीरु वृद्धा ने यही सब देख कर उनसे पूछा—"बेटा! तुम कहाँ जा रहे हो? तुम्हारी तो अभी यात्रा करने की उमर है नहीं।"

गोपाल ने उत्तर दिया— "माँ! मैं यात्रा करने नहीं आया हूँ।"

तब चकित स्वर में वह वृद्धा बोल उठी—"यात्रा करने नहीं आये, तो आये किसलिए हो?"

"प्रकृति से प्रेम करने।"

वह धर्म-भीरु वृद्धा इस उत्तर का अर्थ क्या समझती? हँस कर रह गई।

परन्तु गोपाल ने सारी यात्रा में इस प्रकृति-प्रेम का खुल कर परिचय दिया। यहाँ तक कि बद्रीनाथ पहुँचकर भी उसने मंदिर में होने वाले उत्सवों में कोई रुचि नहीं ली। किसी तरह रात बिता कर वह सवेरे ही वसुधारा के लिए चल पड़ा। उसका मित्र आनन्द सपरिवार उस के साथ था। और गोपाल उन के साथ था, यह कहें तो अधिक सत्य होगा, क्योंकि आनन्द एक बड़ा सरकारी अधिकारी था और निरीक्षण के कार्य से उधर जा रहा था। अच्छा साथ रहेगा—यह समझ कर गोपाल उसके साथ हो लिया था। वैसे उसका साथ बहुत सीमित था। ठहरने और खाने की सुविधा ने उन्हें बाँध रखा था। नहीं तो गोपाल सदा सब को छोड़कर प्रकृति से प्रणय करने की धुन में आगे बढ़ जाता था। वसुधारा के मार्ग पर भी उस ने सब को पीछे छोड़ देना चाहा; पर तभी आनन्द ने पुकार कर कहा—"अरे गोपाल! क्या पितरों को पानी भी नहीं दोगे?"

गोपाल ठिठका। बोला—"कैसे पितर? तुम क्या कहना चाहते हो?"

"वह देखो तुम्हारे दाहिने हाँथ पर, अलखनन्दा के किनारे, उस शिला पर अंजलि की मूर्ति अंकित है"

"हाँ वह है तो......।"

"वह ब्रह्मकपाली है। कहते हैं, यहाँ स्वर्गद्वार से अंजलि फैलाकर पितर लोग अपने वंशधरों से पिण्डदान ग्रहण करते हैं।"

गोपाल ने हाथ की लाठी पर अपनी समस्त देह को तौलते हुए जवाब दिया—"आनन्द! मैं पुण्य-अर्जन करने नहीं, ज्ञान-अर्जन करने आया हूँ।" और यह कह कर वह रुका नहीं, आगे बढ़ गया।

तब तूफानी हवा थम चुकी थी। आकाश में कहीं कोई मलिनता नहीं थी। मेघ थके पथिक की भाँति हिम-शिखर पर आराम कर रहे थे। दिशाएँ निखरी नीलिमा से मुखरित हो रही थीं और अरुण किरणों का मुकुट पहन-कर कैलाश की गरिमा की तरह मुस्करा उठी थीं।

गोपाल जिस मार्ग पर चल रहा था, वह अलखनन्दा के दाहिने किनारे पर, नारायण पर्वत के चरणों में, दूर तक समतल भूमि पर चला गया था।

इस ओर कहीं-कहीं आवास-गृह थे। उस ओर नग-पर्वत के आँचल में दूर-दूर तक ऊँची-नीची भूमि पर अनेक भेड़-बकरियाँ और घोड़े चल रहे थे। उन्हें देखकर सहसा गोपाल को याद आया, नहीं कहीं श्यामकर्ण घोड़े दिखायी देते हैं। उसने दृष्टि गड़ा कर दूर-दूर तक उन अलौकिक जीवों को खोजना शुरू किया और फिर कुछ क्षण बाद एकदम वह लज्जित होकर हँस पड़ा—"मैं भी कैसा मूर्ख हूँ! जो नहीं है, उसी को खोज रहा हूँ।"

तब भीतर का गोपाल यह सोचकर और भी तेजी से हँसा—जो नहीं है, उसीको तो खोजा जाता है। उसी की खोज के लिए ज्ञान का समस्त उपयोग है।"

गोपाल का अन्तर जैसे हिल उठा—"विश्वास-अविश्वास का यह कैसा संघर्ष है। यह कैसा देवासुर-संग्राम निरन्तर चलता रहता है। ऊपर से जो कुछ है, उसका बिल्कुल उलटा ही क्यों अन्तर में रहता है। अहंकार, व्यक्ति-स्वातन्त्र्य, दम्भ, इनमें क्या बहुत अधिक अन्तर है? अन्तर की कुरूपता, मालिन्य और सन्देह ये ही क्या बाहर के दम्भ के दूसरे रूप नहीं है? हाय रे नगण्य पुरुष! तू क्या! नगाधिराज के इस विराट रूप के सामने अपनी अहन्ता की विफलता को स्वीकार नहीं करेगा?"

"नहीं...नहीं....!" गोपाल ने मानो चीख कर कहा—"नहीं, मनुष्य दीन नहीं है, लघु नहीं है, वह यहाँ है और यही उसकी महानता का प्रमाण है।"

वह इसी संघर्ष में तल्लीन था कि आनन्द ने उसके कन्धे को छूकर कहा—"वह देखो गोपाल, तुम्हारे अध्ययन की एक वस्तु...।"

"क्या?" गोपाल चौंका।

"वह देखो वह पक्षी।"

गोपाल ने उसी दिशा में देखा—एक कौए जैसा पक्षी है, पर उसकी चोंच और पंजे लाल हैं।

उसने तब दूरबीन से बहुत-से ऐसे पक्षी खोज निकाले और चुकन्दर

जैसे रंग वाली एक युवती पुआल का अपेक्षाकृत बड़ा बोझ पीठ पर लिए पास से गुजरी तो, उस ने पूछा—"क्यों जी यह पक्षी है ?"

प्रश्न सुन कर युवती नीची दृष्टि किए हुए मुस्कराई और हटकर खड़ी हो गयी। न बोली न आगे बढ़ी, परन्तु पीछे-पीछे एक प्रौढ़ा आ रही थी। उसी युवती का सान्ध्य रूप उसे कह सकते हैं। झरने की तरह हँसती हुई बोली—"क्या पूछते हो, बाबूजी ?"

"वह कौन पक्षी है ?"

"क्याँग चूँ। तिब्बती कौआ।"

"तभी चँ-चूँ करता है।" गोपाल ने हँसते हुए कहा।

नारी तो हँस ही रही थी। उस हँसी से प्रोत्साहित होकर गोपाल उस से प्रश्न पर प्रश्न करने लगा। वह भूल गया कि उसे वसुधारा जाना है। ज्ञान की प्यास ने उसके इस ज्ञान को मोह के कुहरे से ढँक दिया। वह जब जागा, तब उसके साथी नीचे पुल तक पहुँच चुके थे।

वह तेजी से आगे बढ़ा, इतनी तेजी से उसे भागना पड़ा कि उसने उस निरन्तर झूले से झूलते रहने वाले पुल को पार किया। फिर 'माना' गाँव की प्राणायाम वाली चढ़ाई चढ़ कर जैसे ही वह सरस्वती नदी के तट वाली बटिया पर आया, वैसे ही बादलों ने गर्जन-तर्जन के साथ आकाश को घेर लिया। अरुण का स्वर्णिम किरण-जाल छिन्न-भिन्न हो गया और ठण्डे कुहरे ने पृथ्वी को निगल जाने के लिए सुरसा की भाँति मुँह फाड़ना शुरू कर दिया। तभी उसे एक और नारी दिखाई दी। वही झरने-सी हँसी और गहरी सन्ध्या-सी लालिमा। पूछा—"वसुधारा कितनी दूर है ?"

"वह सामने है—दो माइल।"

"मार्ग क्या बहुत विकट है ?"

"न, न, सीधा है। जिस पर तुम जा रहे हो; बस बिल्कुल ऐसा।"

"धारा में बहुत ऊँचे से पानी गिरता है ?"

नारी हँसी और—"हाँ, पर सब पर नहीं गिरती। जो असली माँ-बाप के हैं उन्हीं के मस्तक पर धार गिरती है।"

कह कर वह फिर हँसी और धुंध के गर्त में गायब हो गई।

गोपाल को लगा, जैसे दिशाएँ गूँज उठी हों, पर यह उसने क्या कहा! उसने भी कहीं ऐसा ही पढ़ा था। बस, उसकी गति अनजाने ही शिथिल पड़ गई। वह सोचने लगा—"जो असली माँ-बाप के हैं, उन्हीं के मस्तक पर धार गिरती है। "जो असली माँ-बाप के हैं.... जो..।" कि सहसा उस का ध्यान सुदूरभूत में जा पहुँचा—"द्रौपदी सहित पाण्डव जब युगों पूर्व इसी मार्ग से अलकापुरी गये थे, तब क्या यह धारा उन सबके मस्तक पर न गिरी होगी? क्या वे...! नहीं नहीं। ...यह सब पाखण्ड है, ढोंग है। मूर्खता की चरम सीमा है।" उसने तीव्रता से कहा और वह दूरबीन से सामने फैले हिमप्रदेश को देखने लगा। आगे इसी मार्ग पर सती-पंथ है। जहाँ मानिनी द्रौपदी ने प्राण विसर्जित किए थे। यही अलकापुरी है, जहाँ युधिष्ठिर ने कुत्ते को लेकर धर्मराज की उपाधि पाई थी। अच्छा तो क्या इसी अलकापुरी में इन्द्र का साम्राज्य था? क्या नर-नारायण के तप से डर कर इसी में इन्द्र ने मेनका को उनका तप भंग करने के लिए भेजा था? तब उस दिन यह भयानक हिम-प्रदेश नारी के नूपुरों की झंकार से किस प्रकार झंकृत हो उठा होगा? प्रकृति का यह गैरिक रूप, उस प्रज्वलित वासना का स्पर्श पाकर जिस प्रकार इन्द्रधनुष की आभा-सा चमक उठा होगा! और...और क्या इस धारा की बूंदें उन सब के मस्तकों पर न गिरी होंगी!.....

वह जोर से हँसा—क्या वे सब वर्णशंकर थे? उन्हें माता-पिता की चिन्ता नहीं थी? यहाँ तक कि वे प्रतापी वसु भी, जिन का नाम इस धारा को मिला है, पूछने पर अपने माता-पिता का नाम न बता सके होंगे? और रूप की रानी वह उर्वशी? वह सौंदर्य की प्रतिमा! वहीं कुछ दूर उर्वशी कुण्ड पर उसका जन्म हुआ था, उस के मस्तक को भी तो इस धारा ने कभी नहीं छुआ होगा।

"अभागिन धारा !" उसने आकण्ठ सहानुभूति से भर कर कहा और वह हँस पड़ा। "वह मनुष्य कितना प्रपंची है। उफ! कैसा छकाया है उसने संसार को !"

वह तब एक बहुत ही सँकरे मार्ग पर आ गया था। एक ओर विशाल शिला-खण्ड थे। दूसरी ओर अलखनन्दा का अतल। वह ठिठका। क्षण भर रुक कर उसने उर्वशी की जन्मभूमि को देखा। 'वह अनुमान सौन्दर्य क्या इसी भयानकता के गर्भ से प्रकट हुआ था ? सुना है वहाँ सामने भोजपत्र के वन में कस्तूरा रहता है। सुगन्ध और सौन्दर्य दोनों की जन्मभूमि तनुता (नाजुकता) से कितनी दूर है ? पर......पर......हाँ, ठीक तो है। उसने एकदम सम्हल कर कहा—"जिसे मैं भयानक कह रहा हूँ क्या वही पुरुष के पौरुष की कसौटी नहीं है ? क्या वे सुगन्ध और सौन्दर्य को भोगने के अधिकारी पुरुष नहीं हैं, जो प्रकृति की रुद्रता को अपने पौरुष से मधुरता में बदल देते हैं ?"

तब गोपाल मुस्कराया—"तब वसुधारा के जलकण उन पुरुषों का निस्संदेह अभिषेक करते होंगे; क्योंकि पौरुष ही तो किसी के माता-पिता के गुण-अवगुण की कसौटी है।"

अपनी इसी खोज से गोपाल गर्व से भर उठा; पर उसी क्षण पास के खेत से निर्झर-सी हँसी फूट पड़ी। देखा-एक युवती है; पर इससे पूर्व कि नेत्रों का सम्मिलन हो, वह बिजली-सी दूर जा चमकी। उस निर्जन में गोपाल को लगा, जैसे उर्वशी हँस रही हो। हँसे जा रही हो। इधर-उधर, यहाँ-वहाँ सब कहीं कैलाश में उसकी यही हँसी व्याप्त है। क्षण भर रुककर वह फिर आगे बढ़ा कि वह फिर ग्रीवा उठा कर खिलखिला पड़ी। गोपाल फिर ठिठका। तब सहसा उसकी दृष्टि उसे खोजते-खोजते खेत की पक्की मेड़ पर जाकर अटक गई। देखा वहाँ दूरबीन रखी है। ओह ! विचारों में वह इतना खो गया था कि उसे छोड़े ही जा रहा था ! "तो क्या उसकी इसी भूल पर वह निर्झरिणी फूटी थी ?" उसने मुस्करा कर कह दिया—"तुम को बहुत धन्यवाद निर्झरिणी।"

धारा मिले अल्हड़ता में एक दूसरे का सहारा लिए जल-धारा के बीच में बैठे हुए थे। उन पर चढ़ना कठिन ही नहीं, असाध्य था। उस के सामने दीवार पर चढ़ना मानो गगनतल पर चलना था, परन्तु…

गोपाल मुड़ा। उसने आनन्द को देखा—सुडौल शरीर, आजानबाहु, उन्नत ललाट, विशाल वक्षस्थल सुदृढ़ पग… मस्तिष्क में तूफान उठा—

"आनन्द बड़ी सरलता से इन पत्थरों पर चढ़ सकता है।…वह चढ़ेगा—धारा उसके मस्तक का अभिषेक करेगी…और वह… वह…।"

गोपाल काँपा। जीवन में पहली बार उसे अपनी लघुता का अनुभव हुआ। वसुधारा उस के समूचे अस्तित्व को चुनौती देती जान पड़ी। उड़ती फुहारों के मिस मानो उसने अट्टहास करते हुए कहा —"तुम वर्णसंकर!… गोपाल तुम वर्णसंकर ! !…हा …हा…हा …'तुम वर्णसंकर… वर्णसंकर !!"

जैसे भुचाल आ गया हो ! धारा डोल उठी। गोपाल ने यंत्रवत् भयंकर गति से पत्थरों पर कूदना शुरू कर दिया। कुछ ही देर में वहाँ पहुँच गया, जहाँ धारा सीधी गिर कर एक बड़े शिलाखण्ड से टकराती थी। और फिर सहस्रों खण्डों से होकर वायु के साथ-साथ चारों ओर बिखर जाती थी। तब ठण्डे कुहरे के असंख्य बिन्दुओं ने उसे तर कर दिया। उसका अन्तर आनन्द से भीग गया। वह चिल्ला उठा —"मैं वर्णसंकर नहीं हूँ। मैं वर्णसंकर नहीं हूँ।"

उस आनन्द में वह कई बार चढ़ा और नीचे उतरा। फिर जैसे कुछ याद आया। शीघ्रता से दूर बैठे आनन्द के पास जाकर वह बोला—

"आनन्द ! क्या तुम वसुधारा के पास नहीं जाओगे ?"

"आनन्द ने शान्ति से जवाब दिया—"नहीं।"

"नहीं…!"

हाँ गोपाल ! हम तुम क्या इतने मूर्ख हैं कि इस क्षुद्र जलधारा से अपने

माता-पिता के पाप-पुण्य का निर्णय करवायेंगे । ऊँहूँ !······तुम ठीक कहते थे——यह सब पाखण्ड है निरा पाखण्ड ।"

और फिर टिफनदान खोलते हुए कहा—"आओ—भोजन कर लो। ठण्डा कुहरा पास आ गया है । कुछ ही क्षण में बर्फ गिरने लगेगी ।"

गोपाल तब था भी और नहीं भी। उस का उल्लास तान जैसे उन शिलाखण्डों से टकरा——टकराकर चीत्कार कर रहा था। उसकी ज्ञानार्जन क्षुधा जलबिन्दुओं के साथ उड़ कर उसकी खिल्ली उड़ा रही थी ।

अर्थी के आँसू

मोहनसिंह सेंगर

जब सब लोग चले गये, तो प्रतिभा ने दबे पांव माँ के कमरे में प्रवेश किया और इधर-उधर देखकर धीरे से बोली—"माँ, आखिर मेरी शादी को लेकर तुम लोग इतने परेशान क्यों हो? क्या सचमुच मैं इतनी भारी हो गई हूँ तुम सब के लिए? अगर ऐसा ही है, तो कुठौर फेंकने से कहीं ज्यादा अच्छा तो यही है कि मुझे किसी नदी-कुएँ में ही ढकेल दो, पाप कटेगा।"

माँ ने अन्यमनस्क भाव से, पर एक फीकी मुस्कुराहट के साथ, प्रतिभा को खींच कर अपने गले से लगा लिया और उसके सिर पर हाथ फेरते हुए बोली—"तू सचमुच बड़ी भोली है, बेटी! अरे लड़कियाँ तो पराया धन हैं ही। बड़ी होने के बाद भला उन्हें कोई अपने पास रखता है?"

"हाँ, तो मैं कब कहती हूँ कि मुझे अपने पास ही रखो।" रुँधे हुए गले से प्रतिभा ने कहा—"कह जो रही हूँ कि किसी नदी-कुएँ में धक्का न दे दो सब आफत मिट जायेगी।

इस बार माँ ने प्रतिभा को अपने गले से हटा कर सामने खड़ा किया और उसकी आँखों में आँखें डाल कर बोली—"पागल मत बन, प्रतिभा मैंने कभी तेरी इच्छा के खिलाफ कुछ काम किया, या तुझ से कभी कुछ करवाया है? क्या कभी भी तेरे साथ मैंने कोई दुर्व्यवहार किया? फिर तेरी इस तानेजनी और इन आँसुओं का मतलब?"

एक सिसकी भर कर प्रतिभा ने आँखें झुका लीं और भर्राई हुई आवाज में बोली—"मतलब तुम सब जानती हो माँ।"

तनिक झल्लाकर माँ ने कहा—"भई तुझसे तो पेश आना भी

मुश्किल है। तुझे मालूम नहीं, तेरे पिता जी ने कितने दिनों से खाने-पीने और सोने आराम करने का खयाल छोड़ रात-दिन एक कर तेरे लिए इतना अच्छा घर-वर ढूँढ़ा है। क्या इसे तू कुठौर ही समझती है ?"

"मैं नहीं समझती"—तनिक आवेश में आकर प्रतिभा ने कहा—"केवल यह समझती हूँ कि मैं अभी शादी नहीं करना चाहती। मैं अभी कुछ दिन और पढ़ना चाहती हूँ।"

"शादी नहीं करना चाहती ! आगे पढ़ना चाहती हूँ !!" माँ ने जरा ताने के साथ कहा—"यह कहना बड़ा आसान है, बेटी जी। पर क्या तुम्हें आटे-दाल का भाव मालूम है ? क्या तुझे मालूम है कि इस मँहगाई के जमाने में घर-गृहस्थी चलाना कठिन हो गया है ?"

"तो साफ-साफ यों कहो कि तुम मेरी आगे की पढ़ाई का खर्च नहीं देना चाहती।" प्रतिभा ने तीखे स्वर में कहा।

प्रतिभा, तुम पढ़ी-लिखी हो, बेटी ! मेरे मुँह से क्या-क्या कहलवाओगी ? तुम जानती हो कि तुम्हारे दोनों भाइयों का दूध बन्द कर दिया गया। तुम्हारी शादी के लिए तुम्हारे पिताजी ने २-३ हजार रुपया बैंक में जमा किया था, मँहगाई ने उसे पचा लिया। इन दिनों कभी गौर से उनका चेहरा देखा है तुमने ? चिंता और उदासी की झुरियाँ क्या कभी तुम्हें दिखाई दीं उनके चेहरे पर ? हाय भगवान् !"

"छिः छिः"—कहते हुए प्रतिभा के पिता ने कमरे में प्रवेश कर कहा—"यह क्या झगड़ा मोल ले बैठी तुम माँ-बेटी ? मेरे चेहरे की झुरियों से और प्रतिभा से भला क्या मतलब ? क्या आदमी कभी बूढ़ा नहीं होता।" और फिर हँसकर बोले—"प्रतिभा की माँ, तुम्हारी तरह मैं भला हमेशा जवान थोड़े ही बना रहूँगा ?"

प्रतिभा की माँ जरा लजा गई। प्रतिभा ने धोती के छोर से आँसू पोंछे और कमरे में बाहर जाने लगी, पिता ने द्वार की ओर बढ़कर प्रतिभा का रास्ता रोकते हुए कहा · · · "जरा रुको, प्रतिभा। मैं तुम्हीं से कुछ बात करने आया हूँ। तुम मन खराब न करो बेटी, मैंने गौरीशंकर और उसके बड़े

भाई ने खूब जोर देकर और खोलकर कह दिया है कि ये तुम्हारे आगे पढ़ने की इच्छा पूरी करेंगे और इस दिशा में कोई अड़चन पैदा नहीं करेंगे। बोलो, अब तो तुम्हें कोई आपत्ति नहीं ?"

प्रतिभा कुछ नहीं बोली। उस की आँखें नीचे ही झुकी रहीं। पिता ने फिर कहना शुरू किया—"सिर्फ मनों का ही सवाल नहीं है, बेटी तुम अब सयानी हो गयी हो। लोग पूछते हैं कि अभी तक प्रतिभा की शादी क्यों नहीं की ? पता नहीं, उन्हें दूसरों की शादी में इतनी दिलचस्पी क्यों है ?"

"अच्छी ही तो बात है"—प्रतिभा ने धीमी आवाज में कहा—"आप लोगों को खुश-संतुष्ट करके अपनी मान-प्रतिष्ठा की रक्षा कीजिए। इसमें भला मुझे क्या आपत्ति हो सकती है ?" यह कह कर प्रतिभा कमरे से बाहर चली गई।

पिता ने कुछ चिंतित-सी मुद्रा में प्रतिभा की माँ की ओर देखा और निराश स्वर में बोले—"हाय रे भाग्य ! अपनी ही सन्तान के मुख से क्या ऐसी बातें सुनना हमारे भाग्य में बदा था ?"

"तुम अपना मन खराब मत करो"—प्रतिभा की माँ ने आश्वस्त स्वर में कहा—"आज कल का जमाना ही ऐसा है। पता नहीं पढ़-लिख कर ये लड़कियाँ क्या करेंगी ?"

प्रतिभा के पिता ने एक गहरी ठण्डी साँस ली और धीरे-धीरे कमरे से बाहर चले गये।

(२)

"वह क्या कहती या चाहती है, इससे मुझे कोई सरोकार नहीं" गौरीशंकर के बड़े भाई ने कहा—"पर मैं यह पूछता हूँ कि तेरे भी तो अक्ल है, तेरा मन क्या कहता है ?"

"भैया"—गौरीशंकर ने नम्रतापूर्वक कहा—'होगा तो वही' जो आप और माताजी आज्ञा देंगे, पर मैं समझता हूँ कि अगर उसे पढ़ने-लिखने की सुविधा दी जाय, तो इस में हर्ज ही क्या है ?"

"हर्ज ही क्या है ?"—आँखें मटकाकर बड़े भाई ने कहा—"नई-नई बहू मिली है, इसी से तू उस पर लट्टू है; पर कान खोलकर सुन ले—अगर तूने उसे दबा कर नहीं रखा, ज्यादा पढ़ाया-लिखाया और आजादी दी, तो याद रख एक दिन तुझे पछताना पड़ेगा—और खानदान के नाम पर जो बट्टा लगेगा, वह अलग से !"

गौरीशंकर अभी नई उम्र और कच्चे ज्ञान का युवक था। बड़े भाई की चेतावनी की गहराई को शायद भली भाँति समझ तो नहीं पाया; पर इतना उसे जरूर महसूस हुआ कि उसका कुछ अर्थ जरूर है। हतप्रभ-सा वह चुपचाप वहाँ से अपने कमरे की ओर चला।

कमरे से बाहर पाँव रखते ही उसने देखा कि प्रतिभा चौखट के सहारे खड़ी सारी बातें सुन रही थी। उसके बाहर आते ही बिना कुछ बोले ही वह भी उसके आगे-आगे कमरे की ओर चल पड़ी।

कमरे में पहुँचकर प्रतिभा दाहिनी ओर की दीवार का सहारा लेकर खड़ी हो गई और शून्य दृष्टि से छत की ओर अपलक निहारने लगी। गौरी-शंकर ने पास आकर कहा—"तुमने भाई साहब का फैसला सुन लिया।"

"सुन लिया"—उसी प्रकार छत की ओर देखते हुए प्रतिभा ने कहा।

गौरीशंकर चुप हो गया। "क्या कहूँ, कुछ समझ में नहीं आ रहा है !" प्रतिभा ने फिर कहना शुरू किया—"माँ के मुँह से, पिता जी के मुँह से, जेठ जी के मुँह से और शायद तुम्हारे मुँह से अभी सुनना बाकी है—एक ही बात निकलती है—लड़की को ज्यादा पढ़ाना अच्छा नहीं। पढ़-लिखकर वह हाथ से निकल जायगी ! !" उफ, कितने संकीर्ण और अदूरदर्शी हो तुम लोग ! जो स्वयं सुशिक्षित नहीं, जिनके अपने मानस और चरित्र का विकास नहीं हुआ वे इसके सिवा और सोच ही क्या सकते हैं ? और फिर पास खड़े गौरीशंकर की ओर मुखातिब होकर प्रतिभा ने जरा आवेश के स्वर में कहा, "मैं जानती हूँ, तुम लोग क्यों मुझे आगे पढ़ने नहीं देना चाहते। पैसों का प्रश्न उतना नहीं है जितना तुम्हारी सड़ी-गली मान्यताओं, कुसंस्कारों और अन्ध परम्पराओं का। तुम सोचते होगे कि घर की चहार-

दीवारों में बंद रही पंख की अपनी कुछी, आज्ञाकारी बाँदी और उन झूठे आदर्शों की रक्षा करनेवाली निरीह नहीं बनी रहोगी, जो आज नारी-स्वातंत्र्य के मार्ग में बाधक बने [illegible] है; पर मिस्टर गौरीशंकर, प्रतिभा उस मिट्टी की बनी नहीं है, जो इन [illegible] में [illegible] रह जाय।

प्रतिभा के तीक्ष्ण शब्दों और उस मुद्रा को देख तथा उस का एक-एक शब्द सुन कर गौरीशंकर को अपने आँख-कान पर विश्वास नहीं हो रहा था। विनय और संकोच की साक्षात्-सी प्रतिमूर्ति प्रतिभा के मुँह से आज यह सब क्या सुन रहा था? प्रतिभा बदल गई थी या उसका यही असली रूप है, जो अभी तक परिस्थिति-वश ढँका-मुँदा था। अभी वह यह सब सोच ही रहा था कि प्रतिभा ने फिर कहना शुरू किया— क्यों आप भी किसी जाल में पड़ गये क्या? माँ और भाई के स्नेह ने आप के मन-मस्तिष्क पर गुलामी और परावलम्बन का बहुत गहरा रंग चढ़ा दिया मालूम होता है। उनसे अलग आप का कोई अस्तित्व है, यह शायद आप सोच ही नहीं सकते। फिर उनसे अलग होकर अपने पावों पर खड़े होने की बात तो अभी बहुत दूर की है! माँ और भाई की पराधीनता ने आपके आत्म विश्वास और स्वावलम्बन की प्रेरणा को जैसे मार ही दिया है; पर मैं उम्र-भर अपमान और पराधीनता के टुकड़ों पर पलते और आँसू बहाने यहाँ नहीं आई हूँ। पशु की तरह पेट भरने से कुछ परे भी जीवन का अर्थ है। देश और समाज के प्रति भी तो हमारा कुछ कर्त्तव्य है।"

गौरीशंकर आँखें फाड़ कर प्रतिभा की ओर एकटक देख और यह सब सुन रहा था। उसे ऐसा लग रहा था, मानों कोई सुधारवादी फिलम देख रहा हो। उस के मुँह से केवल एक ही बात निकली—"तो तुम मेरी और भाई साहब की इच्छा के विरुद्ध चलोगी?"

"निस्संदेह"—सहज भाव से प्रतिभा ने कहा—"यह कोई बुरा काम तो है नहीं। फिर मैं तभी ऐसा करूँगी, जब कि अपना खर्च भी निकाल सकूँ। अगर मुझे आगे पढ़ना ही है, तो मैं व्यर्थ आप लोगों पर उसका बोझ क्यों डालूँ?"

“इसका मतलब हुआ कि तुम कहीं कुछ काम भी करोगी ?”

“हाँ, मतलब तो यह साफ है।”

“तो यह बात है!”—कहते हुए गौरीशंकर कमरे में इधर-उधर टह-
लने लगा। प्रतिभा कुतूहल-निश्चित मुद्रा से उसके चेहरे के भावों को पढ़ने
की चेष्टा करने लगी।

(३)

उस दिन जब प्रतिभा लौटी तो गौरीशंकर आ चुका था। कपड़े उतार
कर वह पंखे के नीचे सुस्ता रहा था। मेज पर किताबें रख प्रतिभा जल्दी
से उसके पास आ गयी और सहज भाव से बोली—“आज मुझे आने में देर
हो गई। बुरा तो नहीं मान गये ?”

“मैं बुरा मानने वाला होता ही कौन हूँ ?”—गौरीशंकर ने उदासीनता
दिखाते हुए कहा—“भला अब हमारी किसे परवाह है ?”

‘लो, फिर लगे न फालतू बातें करने। आज प्रोफेसर साहब ने फिर
वही समानाधिकार का मामला छेड़ दिया। इस सम्बन्ध में बातें करते हुए
मुझे तो समय का ध्यान ही नहीं रहा। कितने अच्छे आदमी हैं वे ? उनसे
बातें करने में समय का ख्याल ही नहीं रहता।”

“क्यों प्रतिभा, प्रोफेसर तुमको बहुत पसन्द हैं—यानी बहुत अच्छे
लगते हैं ?”

“हाँ अच्छे लगने लायक आदमी ही हैं वे।”

“मुझ से अधिक अच्छे लगते हैं तुम्हें वे ?”

गौरीशंकर के पास आ और उसकी आँखों में घूमते हुए प्रतिभा ने
जरा कड़े स्वर में पूछा—“क्या मतलब है तुम्हारा इस सवाल से ? तुम
मेरी परीक्षा लेना चाहते हो, या अपने मन का चोर बाहर निकाल रहे
हो ? छिः कितने संकीर्ण-हृदय हो तुम ?”

गौरीशंकर कुछ सकपका गया। फिर तनिक गम्भीर होकर बोला—
“प्रतिभा तुम्हारे मुँह से रोज-रोज प्रोफेसर की प्रशंसा सुनते-सुनते मेरे
कान पक गये। अगर प्रोफेसर तुम्हें बहुत पसन्द हैं, तो . . .”

"नमकहराम को मुँह से कोई ऐसी बात निकाली तो"—बीच में ही टोक कर प्रतिमा ने दर्पपूर्वक कहा—"तुम अपनी जगह पर हो, प्रोफेसर अपनी। मेरा तुमसे जो सम्बन्ध है और मेरे मन में तुम्हारे लिए जो स्थान है, उसकी महत्ता और पवित्रता से मैं बखूबी वाकिफ हूँ; पर प्रोफेसर मेरे आदर और श्रद्धा के प्रतीक हैं। आज के युग में ऐसे सच्चे सत्पुरुष कहाँ मिलते हैं! उनके विशाल उज्ज्वल व्यक्तित्व की छाया में मानो शत-सहस्र वटवृक्षों की-सी शीतलता और शान्ति मिलती है।"

"बस, बस, यह बकवास बन्द करो।"—गौरीशंकर ने तुनक कर कहा—शर्म नहीं आती तुम्हें अपने पति के सामने पर-पुरुष की इतनी प्रशंसा करते ? क्या इतने पर भी तुम असलियत पर पर्दा डाल सकती हो ?"

"नहीं, शर्म की इसमें बात नहीं, मैं उन मूढ़-अन्ध स्त्रियों में से नहीं हूँ, जिनके लिए अकेला पति ही परमेश्वर है और शेष सब पत्थर की निर्जीव मूर्तियाँ। तुम्हारा और मेरा एक सांसारिक सम्बन्ध है। जो मन-मस्तिष्क से अधिक शरीर का है; पर मेरे मन और मस्तिष्क में आदर और श्रद्धा का प्रतीक बनी ऐसी कई मूर्तियाँ हैं, जो मेरी आराध्य हैं। प्रोफेसर भी उनमें से एक हैं।"

"तो तुम उन्हीं के पास क्यों नहीं चली जातीं !"—झल्लाकर कुर्सी पर से उठते हुए गौरीशंकर ने कहा—"मेरी छाती पर मूँग दलने और रोज उसकी तारीफों के पुल बाँधकर मेरा खून जलाने में तुम्हें क्या मजा आता है ?"

प्रतिभा सन्न रह गयी। उसका सारा शरीर रोमांचित हो उठा। उसे अपनी आँखों और कानों पर जैसे विश्वास नहीं हो रहा था। चित्र-खचित उसकी आँखें गौरीशंकर की ओर खुली-की-खुली रह गईं। पुरुष का मन—नहीं, नहीं पति का मन—कितना ओछा और संशयालु हो सकता है, उसे आज मानो नग्न रूप में दिखाई दिया; पर उसके जी को जलाना ही गौरीशंकर का उद्देश्य न था, उस पर नमक डालना भी अभीष्ट था। सो दरवाजे के पास रुककर गौरीशंकर ने कहा—"अहा, क्या त्रिया-चरित्र की माया सीखी है तुमने ? ऐसे देख रही हो, मानो तुम्हें कुछ पता ही नहीं ! मैं

कोई मिट्टी का माधव नहीं हूँ, प्रतिभा। तुम मुझे जितना बुद्धू और भोला समझती हो, मैं उतना तो शायद नहीं हूँ। बहुत दिनों से पास-पड़ोस में तुम्हारे इस नये 'रोमान्स' की चर्चा है। माँ और भाई साहब तो इतने परेशान हैं कि उन्होंने मुझसे बात करना तक छोड़ दिया है। ज्यादा पढ़-लिख कर तुम यह करोगी, इसका मुझे स्वप्न में भी गुमान न था? आज हम लोग किसी के सामने आँख उठा कर देख भी नहीं सकते?"

प्रतिभा जैसे नींद से जगी? आश्वस्त-स्वर में उसने कहा—"ओह, तो बड़े दिनों से अपने दिल में जमा हुआ गुबार निकाल रहे हो आज। पहले तो तुमने कभी ऐसी आशंका प्रकट नहीं की? फिर इतने दिन तक साथ रह कर भी तुमने मुझे नहीं पहचाना और मुझ से अधिक उन लोगों पर विश्वास किया, जो नारी-स्वातन्त्र्य को फूटी आँखों भी देख नहीं सकते, जिन्हें दूसरों को बदनाम करने ही में मजा आता है। पर खैर, जब बात यहाँ तक पहुँच चुकी है, तब तुम्हें जिस तरह भी विश्वास हो, इस बात के सच-झूठ का निर्णय कर लो। पर, यह पहले बता दो कि इस बात के सच निकलने पर तो तुम जो चाहो मुझे सजा दे सकते हो; लेकिन अगर यह बात झूठ निराधार और कपोल-कल्पित साबित हुई, तो तुम क्या प्रायश्चित्त करोगे? जानते हो, यह झूठा लांछन लगा कर तुमने मेरे मन में अपना रहा-सहा स्थान भी खो दिया है। पति तो क्या, इन्सान के रूप में भी तुम मेरी नजरों से गिर चुके हो। बुजदिल नीच कहीं का।"

"जबान बन्द कर प्रतिभा"—गौरीशंकर ने डपट के स्वर में कहा—"नहीं तो अच्छा न होगा। हर बात की एक सीमा होती है। मैं तुझे इससे अधिक अपना अपमान नहीं करने दूँगा।"

"अपमान!"—मुँह बिराकर प्रतिभा ने कहा—"तुम जैसों का कोई आत्म-सम्मान है, जो अपमान होगा। नीच, कुत्ते कहीं के!"

"देख जबान सम्भाल ...."—दाँत पीसकर गौरीशंकर चिल्लाया।

(४)

प्रोफेसर ज्योतिरिन्द्र वसु एकाकी जीव थे। जिस प्रकार किसी विशाल

पर्वत को किसी एक ओर से देख कर उसके सम्पूर्ण रूप का अन्दाजा लगाना कठिन है, उसी प्रकार उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व की जानकारी भी कठिन थी। अपने बारे में वे कभी किसी से कुछ कहते ही न थे। विवाह उन्होंने क्यों नहीं किया और विश्वविद्यालय से मिलने वाला सारा वेतन निर्धन छात्र-छात्राओं में बाँट कर वे अपना गुजर-बसर कैसे करते थे, उस बारे में लोग पूछने पर भी उन्होंने कभी कुछ नहीं बताया; पर नीरस बिल्कुल नहीं थे और जरा-सा उनके हृदय में प्रवेश पा जाने पर तो न सिर्फ ज्ञान का अपूर्व खजाना ही हाथ लग जाता था, वल्कि एक ऐसे उज्ज्वल व्यक्तित्व के दर्शन भी होते थे, जो आज के मानव-समाज में दुर्लभ ही समझिए। उनके व्यक्तित्व के पारस-स्पर्श से न जाने कितने व्यक्ति सुवर्ण बन चुके थे।

संकट के समय इन्हीं के वरद हस्त ने प्रतिभा की रक्षा और सहायता की। प्रोफेसर के रूप में उसे गुरु ही नहीं, एक अगाध स्नेहशील पिता भी मिला और वह बिल्कुल भूल ही गयी कि प्रोफेसर उसके असली पिता नहीं हैं। प्रोफेसर ने भी प्रतिभा में मानो साक्षात् प्रतिभा के दर्शन किये। परिस्थितियाँ, वाधाएँ अभाव आदि जैसे उसे रोक ही नहीं पाते थे। कभी-कभी प्रतिभा के मुँह से नारी की पीड़न-शोषण की वातें सुन कर प्रोफेसर रोने लगते थे। प्रतिभा से उन्होंने प्रतिज्ञा करवा ली थी कि पढ़-लिख कर वह केवल जीविकोपार्जन ही नहीं, वल्कि अपनी पीड़ित-ताड़ित वहनों के उद्धार के लिए भी कुछ करेगी। इसीलिए पढ़ाई के बाद और कभी-कभी पहले या वीच में नारी-पीड़न के संवादों की चर्चा दोनों वड़ी हार्दिक भावना के साथ किया करते थे।

आज प्रोफेसर बार-बार घड़ी देखकर मन-ही-मन कह रहे थे कि पता नहीं, प्रतिभा अभी तक क्यों नहीं आई? अधीर होकर वे कमरे में टहलने लगे। फिर खिड़की से देखा, तो गौरीशंकर के मकान के आगे कुछ लोग जमा देखे। उनकी कुछ समझ में न आया। दो-एक मिनट कुछ सोचने के वाद वे चप्पल पहन कर उस ओर चल दिये।

घर के बाहर गौरीशंकर को दौड़-धूप करते देख वे और पशोपेश में पड़े। उसके पास जाकर वे कुछ पूछना ही चाह रहे थे कि गौरीशंकर ने आँखों में आँसू भर कर अभिनय के पूरे कौशल के साथ कहा—"प्रोफेसर साहब, मैं तो लुट गया। मेरा तो सर्वस्व छिन गया। किसी तरह मुझे सहारा दीजिए। बल दीजिए कि मैं इस आघात को सहन कर सकूँ।"

"पर माजरा क्या है ? मेरी समझ में नहीं आ रहा है।"—प्रोफेसर ने कहा।

"ओह, आप को सूचना भिजवाना तो भूल ही गया था। कल रात को हृदय की गति बन्द हो जाने से अचानक प्रतिभा का देहावसान हो गया। मेरी तो जान ही निकल गयी, प्रोफेसर साहब, अब मैं क्या करूँ ? मेरा क्या होगा ?"

प्रोफेसर को जैसे काठ मार गया। एक क्षण वे सन्न रह गये। फिर गौरीशंकर की ओर देख कर पूछा—"हार्टफेल ! आपको ठीक मालूम है हार्टफेल ही हुआ है ?"

'जी हाँ, जी हाँ"—कह कर गौरीशंकर ने इधर-उधर देखा और फिर विनीत स्वर में बोला—"आप से फिर बातें करूँगा। अब जरा अर्थी को उठवाने की जल्दी करनी है, वर्ना फिर धूप चढ़ आयेगी।"

प्रोफेसर कुछ कहें, इससे पहले ही गौरीशंकर उन्हें आशंकाओं और दुश्चिन्ताओं के भँवर में छोड़ कर घर के भीतर चला गया।

थोड़ी देर बाद अर्थी उठाई गयी। चार आदमियों के कन्धों पर उसे श्मशान की ओर ले जाया जाने लगा। प्रोफेसर ने कन्धा देना चाहा, पर उनके दुर्बल स्वास्थ्य को देख कर उनसे वैसा न करने का अनुरोध किया गया। वे मान गये और चुप-चाप अर्थी से कुछ कदम पीछे साथ-साथ हो लिये।

कुछ तो अपने स्वभाव के कारण और कुछ गर्मी के कारण प्रोफेसर नीचे जमीन की ओर देखते हुए चल रहे थे। एक जगह उन्हें सड़क पर खून की एक बूंद दिखलाई दी; परन्तु इस समय उसके बारे में सोचने की उनकी मनो-

दशा कहाँ थी? पर शीघ्र ही दूसरी, फिर तीसरी, फिर चौथी, फिर पांचवीं.. इस प्रकार खून की बूँदों की एक कतार-सी दिखाई दी। एक क्षण के लिये प्रोफेसर किसी सोच में पड़े, फिर न जाने क्या सोच कर आस-पास के लोगों को हटा कर के अर्थी के बिलकुल निकट पहुँच गये और गर्दन झुका कर उसके निचले भाग को देखने लगे। बीच का हिस्सा कुछ अधिक नीचे झुका-सा दिखाई पड़ रहा था, उस स्थान से कोरे कपड़े में से छन-छन कर चन्द लम्हों के अन्तर से खून की बूँदें टपक रही थीं। प्रोफेसर की आँखों के आगे अँधेरा छा गया और वे वहीं गिरते-गिरते बचे। उनके पाँव लड़खड़ाते देखकर एक व्यक्ति ने कहा—"आपकी तबीयत ठीक नहीं है प्रोफेसर साहब, आप श्मशान चलने की तकलीफ न करें। चलिए, आप को घर पहुँचा देते हैं।"

उस आदमी की सहायता से प्रोफेसर आये और बैठके में रखे सोफे पर लम्बे पड़ रहे। पता नहीं कब तक वे उस अवस्था में वहाँ पड़े रहे।

० ० ०

दूसरे दिन सुबह भंगी ने आकर बताया कि प्रतिभा की हत्या करने के अभियोग में गौरीशंकर, उसका बड़ा भाई और माँ, गिरफ्तार कर लिये गये हैं। लाश डॉक्टरी परीक्षा के लिये भेजी गयी है। सुना है कि लाश की पसली की दोनों हड्डियाँ टूटी हुई हैं।

इकलाई

चन्द्रकिरण सौनरिक्सा

बात अब से दस बरस पहले की है, पर सोनिया के मन पर तो वैसी ही उजली-उजली फैली है,मानो कल ही वह घटना हुई हो। जैसे कल ही तो बिसेसर ने उसे वह सुनहरे फूलों वाली इकलाई लाकर पहनाई हो। साड़ी तो वह कई बरस हुए फट गयी। बहुत सम्हाल कर पहनने पर भी इकलाई फट ही तो गयी। जहाँ तक पैवन्द लग सकते थे और सिलाई-गुँथाई हो सकती थी, गुँथाई करने में सोनिया ने कोर कसर नहीं रखी, पर कपड़ा तो आखिर कपड़ा ही है। फिर जब इस लड़ाई के और उसके बाद के इतने सालों में ब्याह के जोड़े के अतिरिक्त वही, एकमात्र वराऊ कपड़ा था, जो तीज-त्योहार-नाते-रिश्ते में पहन कर सोनिया ने काम चलाया। तो आखिर एक दिन उसे तार-तार होना ही था। हाँ, उसकी यादगार स्वरूप उसकी किनारी को उतार कर उसे अपने पुराने लकड़ी के बक्स में रख लिया है कि शायद कभी उसे मलमल नाम की दुर्लभ वस्तु पाँच क्या साढ़े चार गज भी मिल गयी, तो वह उस पर ही उस किनारी को एक बार और टाँक लेगी; पर मलमल तो क्या बाजार में गाढ़ा-गजी तक ऐसे नदारत हैं, जैसे दुकानदार अब अतलस, कीम-ख्वाब,सिल्क और साटन के अतिरिक्त और कुछ बेचना भूल ही गये हों। उसके देखते-सुनते इन सालों के बीच कई बार सुनाई पड़ा कि कपड़े पर कन्ट्रोल हो गया है। अब सबको कन्ट्रोल की दुकान पर से उस की जरूरत के माफिक कपड़ा मिलेगा। और कन्ट्रोल हुआ भी,पर सोनिया के यहाँ तो कभी ढंग का कपड़ा आया नहीं। एक तो महँगाई के मारे गांव में कभी चार पैसे सुभीते से रहते ही नहीं और जैसे-तैसे पैसे भी जुटाओ, तो उस कंट्रोल की दुकान पर लाइन में कई रोज खड़े होकर सौ-सौ

धक्के खाकर जितना कपड़ा मिलता था। उस में इकलाई तो कभी मिली ही नहीं। छोटे पनहे की मोटी जनानी धोती जो कभी मिली भी, तो घर में तीन स्त्रियों के बीच वह धोती, ऊँट के मुँह में जीरे की भाँति, छीन-झपट में ही चली जाती।

और सोनिया तब उलट-पलट कर वही दस वरस पुरानी इकलाई वाली घटना को दोहरा लेती। उनका गौना हुए दो वरस हुए थे, तव विरादरी की रोटी देने में उस सस्ती के जमाने में भी तीन रुपया कर्ज हो गया था विसेसर पर। मौसी की हँसली भी गिरवी पड़ गयी थी। सो दो वरसों में तन पेट से वचाकर वह कर्ज जव उतारा गया, तो विसेसर सोनिया के लिए पहली वार कुछ कपड़ा लेने वाजार गया।

लौटा तो दिये जल चुके थे। सुनिया रोटी वना रही थी। विधवा वूढ़ी मौसी और वुआ वाहर के छप्पर में वैठी हुई किसी की नयी व्याही वहू के गुण दोषों की मीमांसा में जुटी हुई थीं।

विसेसर ने वगल का वण्डल खटोले पर रख दिया और वीड़ी का अन्तिम कश खींचा और उसे फेंक कर अन्दर को मुँह करके वोला—"तनिक एक लोटा जल दे जाओ, वड़ी प्यास लगी है।"

सुनिया घूँघट काढ़े आकर कटोरे में चार वड़े वताशे और लोटा भर पानी ले आयी। वताशे उसी नई वहू के घर से आये थे। मौसी ने इतने में वंडल खोल डाला था। धुँधली टूटी चिमनी वाली लालटेन की रोशनी में भी उस वंडल में लिपटी साड़ी की किनारी देख कर मौसी का मुँह खुला रह गया आँखों पर विश्वास न आया, तो हाथों से टटोल कर उस साड़ी के मुलायम कपड़े पर हाथ फेरने लगी।

विसेसर तनिक मुस्कराया, फिर वोला—"कैसी लगी धोती मौसी? वाजार भर छान कर लाया हूँ?"

"कितने की है?" वुआ ने भी उजाले में किनारी परखते हुए पूछा।

"तुम्हीं वताओ कितने की होगी?" विसेसर ने तनिक गर्व से कहा। मौसी चिढ़ गयी।

तिनक कर बोली—"न बाप दादों के राज में और न खसम के राज में कभी ऐसी साड़ी पहनी। बाप रे, कैसा महीन तार है इसका। मुट्ठी में दबा लो। दाम क्या बतावें? होगी यही तीन-एक रुपये की। जासती चाहे हो, कम की तो है नहीं।"

"ढाई रुपये, दो पैसे।" बिसेसर ने उत्तर दिया, लाला तो पौने तीन से कम करता ही नहीं था। आखिर पर हम भी मजूर हैं तो क्या, बड़े-बड़ों से काम रखते हैं। सैकड़ों बार लाला का माल स्टेशन से ढोकर लाया हूँ। साढ़े तीन आने छुड़ा ही तो लिये। लाला भी बोला—ले जाओ बेटा, तुम रोज के हमारे आदमी हो, एक साड़ी में चार आने का घाटा ही सही, किसी और भगवान से पूरा हो जायगा।"

"ढाई रुपये।" मौसी सन्न रह गई। भला नित रोज पहनने की साड़ी ढाई-ढाई रुपये की आने लगी, तब तो सुनिया रह ली इस घर में। आठ आने गज तो जापानी रेशम मिलता है। तीन रुपये में तो ब्याह का लँहगा बन जाय। क्षुब्ध स्वर में बोली—

"मैं कहती हूँ बिस्सू, तेरी अक्ल को क्या हो गया है। ढाई रुपये में तो काली किनारे की तीन मोटी धोती आ जाती, जो दो वर्ष भी न फटती। भला, इतना बारीक कपड़ा क्या हम मजूरिनों की बहू-बेटियों के पहनने की चीज है? अरे बहू को अपनी अमीरी ही दिखानी थी, तो दस रुपये की नई चाल की पाजेबें बनवा देता। बहुत धन जमा कर लिया था, तो मुझे भी एक जोड़ी बनवा देता। भला कपड़े में इतना पैसा फेंकना. . ."

मौसी के जी की जलन का मजा लेकर बिसेसर जरा हँस कर बोला—"तू भी मौसी कैसी बातें करती है। अरे क्या गहने गढ़ाने को दस-बीस न हों, तो अच्छा कपड़ा भी न पहिने। भगवान चाहा तो दो-तीन महीने में पायजेब भी बनवा दूंगा। अब जब कपड़ा लेने ही गया था, तो मुझसे तो रद्दी चीज ली नहीं जाती। वैसे तो ढाई रुपये में कुरता भी आ जाता, पर मैं तो एक रुपया उधार करके डिमास का जम्पर सिलने दे आया हूँ। अरे अब लेना ही ठहरा, तो बढ़िया माल क्यों न लें।"

"तो मखमल का लँहगा सिला दे न ! क्या बाजार में मखमल नहीं बिक रही थी ?"

"अरे बुआ ! तुम भी चहकीं" बिसेसर ने उठते हुए कहा—"क्या नहीं है बाजार में ? गाँठ में पैसा होना चाहिए । विलायत की मेम तक खरीदी जा सकती है । एक-एक दूकान पर दो-दो बढ़िया किनारे की धोती साड़ी लटक रही हैं कि देखते रह जाओगी । अच्छा, तारीफ नहीं करोगी कि मोतियों के बीच में हीरा चुन लाया । अब तेरी ये बहू पहनेगी, तो चमक उठेगी । क्यों मौसी ?"

मौसी ने जल-भुन कर कहा—"चमकेगी क्यों नहीं ? इतनी पतली साड़ी में तो अंग-अंग चमकेगी । अच्छा तो है, टोले-पड़ोस में सभी को बहू के दर्शन हो जायेंगे ।"

"तू भी मौसी बस यूँ ही रही । बाल सफेद हो गये, पर अकल नहीं आई । अरी ! बाबू लोगों की घरवाली तो नित-रोज इकलाई ही पहनती हैं । क्या वे नंगी दीखे हैं ? क्या नाम उसका पेटीकोट. . .हाँ, यही तो दो गज लट्ठे में सिल जायेगा । दो आने गज का लट्ठा ले लेना उस दुर्गा बजाज से, फेरी करने आता है । और लालाजी की बहू से मशीन करा दूँगा ।"

मौसी मुँह में बड़बड़ाती हुई उठकर बाहर चली गई । पड़ोस में चार घर कह कर जी का दुःख निकल जाता है न । बुआ भी रमजू की बीमार घर वाली को देखने जाने का बहाना करके चल पड़ी । कपड़े पर इतने पैसे की बरबादी दोनों वृद्धाओं को असह्य हो रही थी । गहने पर रुपया खर्चना तो उनकी समझ में आता था; क्योंकि गहने ही तो उनका वह समस्त आधार होते हैं जिस पर गरीबों के अधिकांश काम हो जाते हैं । बेरोजगारी में उन्हें ही आधे दामों में बेच कर पेट की समस्या हल होती है । बीमारी-हारी में उनको ही गिरवी रख कर दवा-दारू दूध का इन्तजाम होता है । यही नहीं, मरने पर कफन-काठी के लिए गहने ही अन्तिम सहारा होते हैं । चाँदी के वे चन्द गहने, जो तन-पेट में रूखा-सूखा खा-पहन कर बनवा लिये जाते हैं, मौसी की समझ में वही पेट भर का सिंगार और भूखे का आधार होते हैं ।

पर इन नई रोशनी के छोकरों को वह क्या कहें। उस दिन गई रात तक पड़ोस में अपने घर की इकलाई के फैशन की चर्चा करती रहीं। और उस उतने अरमानों की इकलाई को जब पहले-पहल सुनिया ने पहिना था तो उसकी समस्त देह में गुलाव खिल उठे थे। और विसेसर ने मन में सोचा कि अब आगे से इकलाई ही पहनाऊँगा।

पर दोवारा इकलाई पहनाने की नौवत नहीं आई; क्योंकि इस वीच विसेसर वीमार पड़ गया। और एक लड़की का वाप भी वना। दोनों ही खर्चे इतने भारी थे कि सुनिया के कपड़े, परिवन्द और लच्छे गिरवी रख कर ही पार पाया।

विसेसर ने अपने जान अच्छे होकर जी-तोड़ मेहनत की। यही नहीं सुनिया भी, जो कभी आस-पास के वड़े घरों में कूटना-पीसना मिल जाता, तो कूटती, पर ये सात समुन्दर पार जो कहीं जर्मनी वाले से लड़ाई छिड़ गई थी, उससे महँगाई जो वढ़ी, तो कहीं रुकने का नाम न लेती थी।

कर्जा उतार कर चीजें छुड़ाने में दो वरस लग गये। तिस पर वाजार में कभी गेहूँ गायव हो जाता, तो कभी मिट्टी का तेल। और तो और एक वार नमक और रेजगारी तक मिलनी वन्द हो गयी। मजूरी वढ़ती न हुई, सो वात नहीं; पर मजूरी में अगर रुपये में चवन्नी वढ़ती तो चीजें अठगुनी-दसगुनी चढ़ गयी थीं।

सुनिया हैरान होकर पूछती—"क्यों जी, क्या मिट्टी का तेल भी लड़ाई पर जा रहा है? चीनी भी? कोयला-लकड़ी भी?"

विसेसर पढ़ा नहीं तो क्या, शहर के सभी लोगों की उड़ती-उड़ती वातें तो सुनता है। पत्नी के भोलेपन पर हँस कर कहता—"तू भी वस यूँ ही है। अरी! सिपाहियों को क्या वहाँ कुछ नहीं चाहिए? अव तो सवुर कर-के दिन काट। जव लड़ाई वन्द हो, तो चीनी खाइयो। दीयो जलाइयो।"

और सुनिया वड़े सव्र से सालों अँधेरे में रोटी करती रही। कभी वाजार से भूख वुझाई, कभी वाल-वच्चों को शकरकन्द उवाल कर ही पेट का आधार कराया। हे भगवान! लड़ाई वन्द हो जाय, तो वह महावीर जी को सवा सेर

का रोट चढ़ावेगी। बात यह है कि और देवता तो घी का पकवान माँगते हैं; पर महावीरजी को तेल का रोट चढ़ा कर भी काम चल सकता है।

एकलाई बहुत सम्हाल-सम्हाल कर पहनने पर भी फटने लगी। त्रिसेसर पाँच-सात रुपये तक जेब में डालकर वैसी साड़ी लेने के लिए बाजार गया; पर दुकानों पर तो उसने वैसे कपड़े के किनारे की झलक भी न देखी। हाँ, सुनिया से उसे बताया जरूर कि लाला दीपचन्द की बहू अब भी वैसी एकलाई पहनती है, पर उन्नीस रुपये की एक मँगाई है। "उनका क्या, राजा आदमी हैं?" त्रिसेसर ने कहा—"लड़ाई खतम हो, तो जरा सस्ता होने पर एक बार इकट्ठी चार पाँच एकलाई ला दूँगा।" सुनिया भी आश्वस्त होकर कहती—"हाँ जी, बिटिया भी सयानी हो गई। एक दो कपड़ा उसके लिए भी तो रखना होगा।"

आज सुनिया की लड़की की सगाई होने वाली है। नौ बरस की बिटिया उनकी दृष्टि में बहुत बड़ी हो गई है। महीना पहले से ब्लैक से जौ-मटर लाकर वह राशन का गेहूँ बचाकर रखती रही है। चीनी भी इकट्ठी कर ली है। घी तो खैर असली मिल ही नहीं सकता, इसका उसे ध्रुव विश्वास है। इसी से डालडा लेने तक के लिए भी लाइन में खड़ा होना पड़ता है। परसों मौसी तीन घण्टा धूप में तप कर कहीं ला पाई हैं। बढ़िया चावल तो ढूँढ़ने पर भी कहीं नहीं मिला। वही राशन का मोटा अरवा चावल ही मेहमानों को खिलाना होगा; पर मुसीबत है कपड़े की। कपड़ा तो जैसे सपना हो गया है। सुनिया बेचारी तो समझ ही नहीं पाती कि वे अच्छे दिन कहाँ चले गये? जब गाँठ में पैसा होने से दुनिया भर की चीजें आ जाती थीं। लड़ाई बन्द हो गई। सुराज भी मिल गया। नेहरू जी राजा भी हो गए पर महँगाई रत्ती भर भी नहीं घटी। कपड़ा तो महँगा-सस्ता कैसा भी नहीं मिलता। भला समधी के सामने वह ब्याह का जोड़ा पहने भली लगेगी। नहीं जी जैसे भी हो एक किनारादार अच्छी धोती तो मँगानी ही पड़ेगी—एक धोती के लिए इससे अधिक दामों की कल्पना सुनिया कदाचित् सात जन्म भी नहीं कर सकती। उसने अपनी गोलक तोड़ी। उसमें सोलह रुपये सात आने निकले

जैसे कलेजे के टुकड़े अपने हाथों बिसेसर को सौंप रही हो, उसी तरह से रुपये उसके हाथों में रखती हुई वह बोली—"देखो जी ! जैसे भी हो एक धोती जरूर ले आना।"

बिसेसर क्या चाहता नहीं कि सुनिया अच्छा कपड़ा पहने ?

आज ही कन्ट्रोल से कपड़ा मिलने की खबर है। वहाँ अच्छी इकलाई तो क्या मिलेगी, पर जो भी मिले, ले आवेगा। अगर मरदानी धोती मिल गई, तो वही सही। पुरानी किनारी उसी पर टाँक लेगी, रंग लेने पर सब ऐब ढँक जायेगा।

दोपहर में मेहमान लोग आ गये। बिसेसर कपड़ा लेने गया था। सुनिया मोटी मैली धोती पहिने कोठरी में दुबकी रही। बस मौसी ने ही हुक्के-तमाखू और शर्बत पानी देने का जिम्मा ले रखा था।

बिरादरी के पाँच-छः बजे तक आ जायेंगे। सुनिया ने कोठरी में ही धुएँ और गर्मी से झुलसते हुए पूरियाँ, पुये-कचौड़ी, सब कुछ बनाया है। रह-रह कर छप्पर की ओर ताकती कि शायद बिसेसर साड़ी लेकर आता होगा।

पाँच बजे पसीने से तर धूप में दिन भर खड़े रहने से काला पड़ा चेहरा लिये बिसेसर लौटा कन्ट्रोल की दुकान से। पाँच गज मोटी मारकीन और चार गज पतला डोरिया मिला था।

अन्दर जाकर बण्डल पत्नी के हाथों में रख दिया।

सुनिया ने आटा सने हाथों से ही बण्डल खोल डाला।

"और साड़ी !" उसने मारकीन की तहें अच्छी तरह टटोलकर पूछा।

"बस-बस साड़ी-वाड़ी यही है। सारे दिन लैन में खड़े होकर यही मिला है। इस मारकीन पर टाट की किनारी जड़कर पहन लीजो।" बिसेसर ने जले स्वर में उत्तर दिया।

"अरे तो क्या पन्द्रह रुपये में भी इकलाई नहीं मिली ? लड़ाई खत्म हुए भी सालों हो गये।"

"लड़ाई साली क्या करेगी—बिसेसर फूट पड़ा—"जब तक इन

चोर-बाजारी करने और काला मुनाफा करने वालों का सत्यानाश न होगा, कोई चीज भी मिलनी कठिन है। जानती है बाजार में किसी ने भी सूती बढ़िया इकलाई होने की हामी ही नहीं भरी।...'

भला मजूर के मैले-फटे कपड़े क्या इकलाई खरीद सकते हैं? एक सूरजमल ने बहुत चिरौरी करने पर कहीं भीतर से लाकर दिखाई भी तो दाम जानती है क्या माँगें! इक्कीस रुपये! इन दामों माल न बिके; तो भी उनकी बला से। चोर बाजारी की कमाई थोड़ी कर ली है उन्होंने!"
सुनिया तब रुँआसी होकर कपड़े रखने चली। लकड़ी का बक्स खोलकर उस पुरानी किनारी को हसरत से टांक कर उसने मारकीन उसी में रख दी और पुराने ब्याह के लहँगे की तहें खोलने लगी।

○

का रोट चढ़ावेगी। बात यह है कि और देवता तो घी का पकवान माँगते हैं; पर महावीरजी को तेल का रोट चढ़ा कर भी काम चल सकता है।

इकलाई बहुत सम्हाल-सम्हाल कर पहनने पर भी फटने लगी। बिसेसर पाँच-सात रुपये तक जेब में डालकर वैसी साड़ी लेने के लिए बाजार गया; पर दूकानों पर तो उसने वैसे कपड़े के किनारे की झलक भी न देखी। हाँ, सुनिया ने उसे बताया जरूर कि लाला दीपचन्द की बहू अब भी वैसी इकलाई पहनती है, पर उन्नीस रुपये की एक मँगाई है। "उनका क्या, राजा आदमी हैं?" बिसेसर ने कहा—"लड़ाई खतम हो, तो जरा सस्ता होने पर एक बार इकट्ठी चार पाँच इकलाई ला दूँगा।" सुनिया भी आश्वस्त होकर कहती—"हाँ जी, बिटिया भी सयानी हो गई। एक दो कपड़ा उसके लिए भी तो रखना होगा।"

आज सुनिया की लड़की की सगाई होने वाली है। नौ बरस की बिटिया उनकी दृष्टि में बहुत बड़ी हो गई है। महीना पहले से ब्लैक से जौ-मटर लाकर वह राशन का गेहूँ बचाकर रखती रही है। चीनी भी इकट्ठी कर ली है। घी तो खैर असली मिल ही नहीं सकता, इसका उसे ध्रुव विश्वास है। इसी से डालडा लेने तक के लिए भी लाइन में खड़ा होना पड़ता है। परसों मौसी तीन घण्टा धूप में तप कर कहीं ला पाई हैं। बढ़िया चावल तो ढूँढ़ने पर भी कहीं नहीं मिला। वही राशन का मोटा अरवा चावल ही मेहमानों को खिलाना होगा; पर मुसीबत है कपड़े की। कपड़ा तो जैसे सपना हो गया है। सुनिया बेचारी तो समझ ही नहीं पाती कि वे अच्छे दिन कहाँ चले गये? जब गाँठ में पैसा होने से दुनिया भर की चीजें आ जाती थीं। लड़ाई बन्द हो गई। सुराज भी मिल गया। नेहरू जी राजा भी हो गए पर महँगाई रत्ती भर भी नहीं घटी। कपड़ा तो महँगा-सस्ता कैसा भी नहीं मिलता। भला समधी के सामने वह ब्याह का जोड़ा पहने भली लगेगी। नहीं जी जैसे भी हो एक किनारादार अच्छी धोती तो मँगानी ही पड़ेगी—एक धोती के लिए इससे अधिक दामों की कल्पना सुनिया कदाचित् सात जन्म भी नहीं कर सकती। उसने अपनी गोलक तोड़ी। उसमें सोलह रुपये सात आने निकले

जैसे कलेजे के टुकड़े अपने हाथों बिसेसर को सौंप रही हो, उसी तरह से रुपये उसके हाथों में रखती हुई वह बोली—"देखो जी ! जैसे भी हो एक धोती जरूर ले आना।"

बिसेसर क्या चाहता नहीं कि सुनिया अच्छा कपड़ा पहने ?

आज ही कन्ट्रोल से कपड़ा मिलने की खबर है। वहाँ अच्छी इकलाई तो क्या मिलेगी, पर जो भी मिले, ले आवेगा। अगर मरदानी धोती मिल गई, तो वही सही। पुरानी किनारी उसी पर टाँक लेगी, रंग लेने पर सब ऐब ढँक जायेगा।

दोपहर में मेहमान लोग आ गये। बिसेसर कपड़ा लेने गया था। सुनिया मोटी मैली धोती पहिने कोठरी में दुबकी रही। बस मौसी ने ही हुक्के-तमाखू और शर्बत पानी देने का जिम्मा ले रखा था।

बिरादरी के पाँच-छः बजे तक आ जायेंगे। सुनिया ने कोठरी में ही धुएँ और गर्मी से झुलसते हुए पूरियाँ, पुये-कचौड़ी, सब कुछ बनाया है। रह-रह कर छप्पर की ओर ताकती कि शायद बिसेसर साड़ी लेकर आता होगा।

पाँच बजे पसीने से तर धूप में दिन भर खड़े रहने से काला पड़ा चेहरा लिये बिसेसर लौटा कन्ट्रोल की दुकान से। पाँच गज मोटी मारकीन और चार गज पतला डोरिया मिला था।

अन्दर जाकर बण्डल पत्नी के हाथों में रख दिया।

सुनिया ने आटा सने हाथों से ही बण्डल खोल डाला।

"और साड़ी !" उसने मारकीन की तहें अच्छी तरह टटोलकर पूछा।

"बस-बस साड़ी-वाड़ी यही है। सारे दिन लैन में खड़े होकर यही मिला है। इस मारकीन पर टाट की किनारी जड़कर पहन लीजो।" बिसेसर ने जले स्वर में उत्तर दिया।

"अरे तो क्या पन्द्रह रुपये में भी इकलाई नहीं मिली ? लड़ाई खत्म हुए भी सालों हो गये।"

"लड़ाई साली क्या करेगी—बिसेसर फूट पड़ा—"जब तक इन